अद्वैत योगकी नवीन संस्कृति

श्री झवेरभाई पटेलने यह छोटीसी पुस्तक लिखकर देशकी बड़ी कीमती सेवा की है। इस पुस्तकका उद्देश्य इतना ही नहीं है कि ग्राम-जीवनमें अनेक प्रकारके सुधार करके ग्रामवासियोंको अधिक सुखी बनाया जाय। देशकी जनताकी हमने इतनी घोर उपेक्षा की है और लोक-जीवनमें हमने इतने अधिक प्रश्न खड़े कर दिये हैं कि अब छोटे-मोटे सुधार करनेसे काम नहीं चलेगा। अब तो संपूर्ण समाज-रचनाको ही जड़मूलसे बदलनेका समय आ गया है। और इस नई रचनाको अहिंसाके आधार पर खड़ा नहीं किया गया, तो मानव-जाति सुरक्षित नहीं रहेगी और न सामान्य मानव ही सुखी होगा।

अहिंसक समाज-रचनाके दो मुख्य लक्षण हैं (१) समाजका आदमी छोटा हो या बड़ा, हम उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे। उसके सुख-दुःखकी उपेक्षा नहीं करेंगे। हमारे पास जो भी कुशलता हो, साधनोंकी सुविधा हो और अनुभवसे विकसित की हुई जो भी सूझ-बूझ हो, उस सबका लाभ समाजके प्रत्येक व्यक्तिको निरपवाद रूपसे मिलना ही चाहिये। यह अहिंसाका पहला लक्षण है। अब हम इस बातको समझने लगे हैं कि मानव-परिवारके किसी भी सदस्यके प्रति मनमें उपेक्षाका भाव रखना हिंसाका ही एक प्रकार है। यदि हम पूरी तरह इस वस्तुको समझे न हों, तो हमें इसे समझना ही होगा। (२) समाजका कोई व्यक्ति अच्छी स्थितिमें हो, उसके पास कुशलता हो, साधन-संपत्ति या अधिकार हो और आवश्यक धूर्तता भी हो और इस वजहसे यदि वह दूसरे किसीकी दुर्दशाका लाभ उठाकर उसे चूसे, उसे हीन समझे अथवा उसे हीन स्थितिमें रखे और उसके श्रमका अनुचित लाभ उठावे — थोड़ेमें उसका शोषण करे, उसे दबाये और उसे उन्नति करनेका अवसर न मिलने दे, तो यह बड़ीसे बड़ी हिंसा है। यह हिंसा आज संसारमें इतनी ज्यादा फैली हुई है और इतने अधिक विभिन्न रूपोंमें प्रगट होती है कि ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि

शोषण ही आजके युगका विश्वव्यापी महारोग है। शोषक और शोषित दोनोंको इस महारोगसे मुक्त करना आजके युगका सबसे महान युगकार्य है। मानव-समाज यदि इस रोगसे मुक्त हो सका, तो कहा जायगा कि विश्वमें सत्ययुगका आरंभ हो गया।

हमारे देशमें बहुजन-समाज प्राचीन कालसे गांवमें ही रहता आया है। खेती, वनस्पति, पशु-पक्षी, मेघराज, नदियां और ऋतुओंका चक्र -- ये सब हमारे जीवनके मुख्य प्राकृतिक अंग हैं। इन सबका एकसा विचार करके हमने अपनी संस्कृतिकी नींव डाली और उस नींव पर अपनी विश्वकल्याणमयी संस्कृतिका विशाल प्रासाद खड़ा किया। हमारा संकल्प शुद्ध था और शुभ था। परन्तु उसे सिद्ध करनेमें हमें सदा सफलता मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

हमने लोक-कल्याणके लिए समाजका संगठन किया, धर्मसंस्था द्वारा उसका नियमन किया तथा राज्यसत्ता द्वारा उसे सुरक्षित, सुव्यवस्थित और संतोषकारक बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नमें हमें उस युगकी दृष्टिसे काफी सफलता मिली। परन्तु धर्म द्वारा स्थापित की हुई चातुर्वर्ण्य व्यवस्थामें तथा राज्यसत्ता द्वारा चलाये गये बाह्य नियमनमें बुनियादी दोष थे। जहां राज्यसत्ता खड़ी हुई वहां राजधानी भी खड़ी हुई, शहर बसे, तथा समाजमें पौर और जानपद -- शहरी और देहाती -- जैसे भेद पड़े। ये भेद एक दृष्टिसे स्वाभाविक माने जायंगे। परन्तु इनसे मानव-जीवनकी कृत्रिमता बढ़ी, और संस्कृतिका विस्तार चाहे जितना हुआ हो, फिर भी समाजकी नींवमें कृत्रिमता, अन्याय और असमानताके बीज पड़ गये।

प्रचलित हो गई कि बडीसे बडी आफत आ पड़े तो भी शहर नही छोड़ा जा सकता।

शहरी जीवनका आकर्पण केवल हमारे ही देशमें नही है, परन्तु यूरोप-अमेरिकामें — सारी दुनियामें ही है। पिछले महायुद्धमे बमवर्पासे शहरोंके बड़े बड़े मकान जमीदोज होने लगे थे, फिर भी कुछ लोग गावोंमें जानेके बजाय उन मकानोके खडहरोंके तहखानोंमें रहना ज्यादा पसन्द करते थे। गावोंमें बमका डर कम रहने पर भी लोग वहा जानेकी बातको भरसक टालते थे। ऊपरकी कहावत वहा अक्षरशः लोकमान्य बन गई थी।

फिर भी हमारे देशमें ८० प्रतिशत लोग गावोंमें ही बसते हैं। जब तक मनुष्य देहधारी है तब तक अन्नके बिना उसका काम चल ही नही सकता। और पशु हो या मनुष्य, भोजन तो उनको जमीनसे ही मिलनेवाला है। इस कारण मानव-सस्कृतिका काम जमीन, खेती, बगीचे, दुग्धालय, भेड-बकरी तथा मुर्गी या मछलीके बिना चल ही नही सकता। शहर चाहे जितने फल-फूल जाय, लेकिन उनका आधार तो खेती-प्रधान गावो पर ही सदा रहनेवाला है।

ससारका नेतृत्व भले ही शासको, सेनापतियों, न्यायाधीशों, विद्वानो और व्यवसायियों तथा उद्योगपतियोंके हाथमें हो, परन्तु जगतका पिता तो अतमें किसान ही है।

इस किसानका, उसके गावोका और इन दोनोंके आसपास विकसित जीवनका भविष्यमें क्या होगा? और क्या होना चाहिये? — इसीका चिन्तन करनेवाली और इस सम्बन्धमें कीमती सूचनायें देनेवाली यह पुस्तक है।

विदेशी भाषाओंमें सपूर्ण समाजकी पुनर्रचना करनेकी आवश्यकता तथा पद्धतिका विचार करनेवाला अत्यन्त कीमती साहित्य पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध है। इसके पीछे उन उन देशोंका अनुभव और उन उन प्रजाओं द्वारा निश्चित किया हुआ आदर्श होता है। इन दोनोंका प्रतिबिम्ब लिये हुए लेख और पुस्तकें हमारे देशमें दिखाई देने लगी हैं। परन्तु भारतकी परिस्थितिका विचार करके व्यवहारमें उतारा जा सकनेवाला चिन्तन

बहुत थोड़ा दिखाई देता है। इसलिए मैं मानता हू कि श्री झवेरभाई पटेलकी पुस्तकका इस दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। वह इस कमीको पूरा करती है।

सामान्य कालेजोमें प्राप्त होनेवाली शिक्षा ग्रहण करके श्री झवेरभाई जब गुजरात विद्यापीठमें आये, उस समय उसकी पुनर्रचना हो रही थी और गाधीजीकी सूचनाके अनुसार भारतके सच्चे अर्थशास्त्रकी नीव डाली जा रही थी। गाधीजीने कहा था कि पश्चिमके अर्थशास्त्रको भूल जाओ; अपने पूर्वग्रहोको त्याग दो। गावोमें जाकर वहांकी परिस्थितिका अवलोकन करो, गहराईमें उतर कर लोक-जीवनके गुण-दोषोंकी जाच करो और इस ठोस तथा मजबूत बुनियाद पर ऐसे स्वतंत्र और लाभदायी अर्थशास्त्रकी रचना करो, जो भारतकी परिस्थितियोंके अनुकूल हो तथा देशके सामान्य जनका उद्धार कर सके।

गाधीजीकी इस सूचनाके अनुसार मैंने श्री कुमारप्पाको गुजरातके एक तालुकेका सर्वांगीण सर्वेक्षण (Survey) करनेका काम सौंपा और उनकी मददके लिए विद्यापीठके दो प्रौढ विद्यार्थी उन्हे दिये। उनमे से एक श्री झवेरभाई पटेल थे।

मेरा विचार उस तालुकेका सर्वांगीण सर्वेक्षण करनेका था, जिससे समाजशास्त्रकी दृष्टिसे जीवनके सभी पहलुओका अध्ययन हो सके। परन्तु सरदार वल्लभभाईने सुझाया कि फिलहाल तालुकेकी आर्थिक जाच करके ही हम सतोष मानें। मैंने उनकी दूरदर्शितापूर्ण सूचनाको मान लिया। इसके फलस्वरूप मातर तालुकेकी जाचकी रिपोर्ट आज देशके सामने है। उसीके आधार पर बादमें देशके अन्य स्थानोमें भी जाच हुई। स्वराज्यकी लडाईने उग्र रूप धारण न किया होता, तो यह कार्य चारो ओर फैलता।

उसके बाद दाडी-कूच और नमक-सत्याग्रहकी लडाई चली। विद्यापीठको सरकारने जब्त कर लिया। गाधीजीने अपने सत्याग्रह आश्रमका विसर्जन कर दिया और हम सब वर्धा चले गये। वहा गाधीजीने खादीकी सहायतामें ग्रामोद्योगोके पुनरुद्धारकी नई प्रवृत्ति

आरभ की। उन्होंने श्री कुमारप्पाको इसके लिए बुलाया और मैंने श्री झवेरभाईको बुलाकर श्री कुमारप्पाकी मददमें रखा।

वर्धामें श्री झवेरभाईको गाधीजीके प्रत्यक्ष मार्गदर्शनका लाभ मिला। श्री कुमारप्पाका नेतृत्व तो उन्हें मिला ही। उस वातावरणमें श्री झवेरभाईने तेल-उद्योगकी तथा घानीकी स्थितिकी जाच करनेके लिए सारे भारतकी यात्रा की, दोनोंका वैज्ञानिक अध्ययन किया तथा ग्रामजनोंके भोजन, उनके रहन-सहन, आर्थिक स्थिति, जीवन-सगठन आदिकी जाच की। इसके फलस्वरूप वे ग्राम-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे प्रश्नोंसे परिचित हुए।

स्वराज्य-प्राप्तिके बाद भारत-सरकारने योजना-आयोगकी स्थापना की। और शहरों तथा गावोंके सारे प्रश्नोंका अध्ययन करके देशका मार्गदर्शन करनेका कार्य उसे सौंपा। इस कार्यमें सम्मिलित होना श्री झवेरभाईके लिए स्वाभाविक ही था। वहा रहकर उन्होंने भारतके गावोंके प्रश्नोंका गहरा अध्ययन किया, अखिल भारतीय अकोंके आधार पर अपने सिद्धान्त बनाये और सम्बन्धित लोगोंके समक्ष अपने ढगसे उन्हें प्रस्तुत किया। बीचमें श्री जवाहरलालजीकी सूचनासे गाधी स्मारक निधिने गाधी-घर स्थापित करनेकी योजना पर अमल किया। उसमें श्री झवेरभाईको अपने विचारों तथा अपनी सूचनाओंके अनुसार प्रयोग करनेका मौका मिला।

ऐसे ठोस अनुभव तथा गहरे चिन्तनके फलस्वरूप उन्होंने जवाहरलालजीकी दूसरी एक सूचनाके अनुसार अनेक सघन क्षेत्रोंमें स्थानीय लोगोंकी ही सूझ-बूझसे ग्राम-विकास सिद्ध करनेके प्रयोग आरभ किये।

सामूहिक विकास (कम्युनिटी डवलपमेण्ट) के प्रयोग अभी देशमें चलते ही है। उन प्रयोगोंके साथ इन सघन क्षेत्रोंके स्वयभू विकासकी योजनाकी तुलना जरूर होगी। श्री झवेरभाईने अपने कार्यके बारेमें थोडा थोडा ठोस साहित्य हमें दिया है। उस साहित्यका सार हमें इस पुस्तकमें मिलता है। परिस्थितिवश उन्होंने यह पुस्तक पहले अंग्रेजीमें लिखी। परन्तु गाधीजीकी पद्धतिसे काम करनेवालेको इतनेसे सतोष कैसे हो सकता था? जिन लोगोंके लिए उनका यह सारा चिन्तन

चलता है और जिनके आधार पर भिन्न भिन्न प्रयोग किये जाते है, उनके कानों तक तो यह सब पहुंचना ही चाहिये । इसलिए श्री झवेरभाईने तुरन्त ही अपनी पुस्तकका गुजराती अनुवाद कराया। और अब यह हिन्दीमें भी प्रकट हो रही है।

आशा है कि सरकार तथा प्रजा इस गहरे चिन्तनका रहस्य समझ लेगी और इसमें दी गई सूचनाओं पर निश्चित योजना बनाकर अमल करेगी।

आज तक हमारे देशमें पूंजीवाद, समाजवाद तथा साम्यवादकी बहुत चर्चा हुई है। विदेशी चर्चाका चर्वितचर्वण करनेके सिवा विशेष कुछ इस चर्चामें नही था। भारत-सरकारके सामने यह केवल चर्चाका विषय नही था। राज्य कैसे चलाना चाहिये, कौनसे सिद्धान्तोको मान्यता देनी चाहिये, प्रजाहितकी योजनाओंकी बुनियाद क्या हो सकती है — इन सारे प्रश्नोंका व्यावहारिक और ठोस हल उसे खोजना था।

देशकी बेकारी कैसे दूर की जाय? हर आदमीको काम या रोजी कैसे दी जाय? अन्नके बारेमें हमारी प्रजा विदेशों पर निर्भर न रहे इस प्रकारकी स्थिति कैसे पैदा की जाय? देशमें छोटे और बड़े सभी उद्योगोको कैसे विकसित किया जाय? इतने विशाल देशके सरक्षणकी पूरी तैयारी करनेके लिए देशमे उद्योग-धन्धे बढाकर उसकी सपत्ति और साधन-सामग्री कैसे बढाई जाय? — ऐसे ऐसे अनेक बड़े प्रश्न हमारे सामने मुह बाये खड़े है। इसीमें से ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन देकर बेकारी दूर करनेकी बात पैदा हुई। सहकारी खेती, सहकारी ग्रामोद्योगों और सहकारी जीवनके बिना हम आगे नही बढ सकते, यह वस्तु पूरी तरह हमारी समझमें आई। और इसके फलस्वरूप गाधीजीके अर्थशास्त्रकी हमें नये सिरेसे परीक्षा करनी पडी।

गाधीजीके अर्थशास्त्रमे एक पक्ष यह विचार रखता है कि 'चरखेसे नकली अच्छी है, यत्रोमे हम जितने बच सकें उतना ही अच्छा, जीवन सादा और मध्ययुगके जमानेका बिताया जा सके तो अच्छा।' इसके

विरुद्ध ऐसे प्रश्न पूछनेवाले लोग गांधी-मंडलमें ही खड़े हो गये हैं — 'जीवनकी प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी करनेमें ही जीवनका सारा समय और जीवनकी बहुत सारी शक्ति खर्च करनी हो और कमसे कम सामाजिक संगठन करके केवल स्वावलम्बनको ही जीवनमें प्रधानता देनी हो, तो आदिवासियोंका जीवन क्या बुरा है? उन्हींकी संस्कृतिको हम क्यों न अपना लें?'

जिस दिन हमने अंबर चरखेको स्वीकार किया उसी दिन हम समझ सके कि इन दो विचारोंके बीच मौलिक सिद्धान्त-भेद है। स्वराज्य-प्राप्तिके बाद केवल आदर्श प्रयोग करके हम सन्तोष नहीं मान सकते थे। राष्ट्रके सभी प्रश्नोंको हल करनेकी जिम्मेदारी स्वीकार करना ही स्वराज्य है, यह बात स्पष्ट हो जानेके बाद वस्तुस्थितिकी उपेक्षा करके तथा काल्पनिक जगतमें विहार करनेकी गुंजाइश नहीं रही। किसी भी प्रश्नके सामने आने पर गांधीजी सत्य और अहिंसाके आदर्शको पुनः याद करके परिस्थितिके अनुसार उसे हल करनेका कैसा प्रयत्न करते थे तथा जिस आदर्शको व्यवहारका रूप नहीं दिया जा सकता उस आदर्शमें ही दोष है ऐसा कहकर वे प्रत्येक प्रवृत्तिको कैसे नया मोड़ देते थे, यह जिन लोगोंने उनके साथ रहकर नजदीकसे देखा है, वे अब मौलिक दृष्टिसे इस प्रश्न पर सोचने लगे हैं।

विज्ञान हमारा शत्रु नहीं है। और अज्ञानसे चिपटे रहकर हम प्रगति नहीं कर सकते, इतनी बात जिन्होंने अच्छी तरह समझ ली है वे गांवोंकी पुनर्रचनाकी बात पर नई दृष्टिसे सोचने लगे हैं।

सच पूछा जाय तो अब एक गांव एक घटकके रूपमें अपना काम नहीं कर सकता। जितने लोगोंका जीवन अनिवार्यतः परस्पर ओतप्रोत होनेवाला है उतनोंको एक घटक मान कर उन सबके बीच सहकार सिद्ध किया जाय, तो ही मानव-जाति प्रगति कर सकती है यह बात दोनोंको तरह स्पष्ट है। ऐसा करनेके लिए हमें पुराने विचारोंको छोड़ देना पड़ेगा, पुरानी परम्परासे बाहर निकलना होगा। जिन लोगोंके जीवनकी आज तक हमने उपेक्षा की है उनके जीवनमें हमें ओतप्रोत होना पड़ेगा तथा व्यापक संगठनकी आदत डालकर स्वावलम्बनकी

अपेक्षा समान भूमिका पर रखे हुए और आत्मीयताके भावसे पुष्ट बने हुए परस्परावलम्बनका विकास करना होगा।

यह जडमूलसे होनेवाली जीवन-क्राति है। इसके लिए (१) विचार-परिवर्तन, (२) जीवन-परिवर्तन और (३) समाज-परिवर्तनकी त्रिविध क्राति सिद्ध करना अनिवार्य है। यह सच है कि विचार-परिवर्तनसे ही मनुष्य अन्य दो परिवर्तन करनेके लिए तैयार होता है; परन्तु जीवन ऐसी गूढ वस्तु है कि उसमें ये तीनो परिवर्तन किसी क्रमसे नही होते, बल्कि एक-दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हैं। कभी कभी समाज-परिवर्तन हो जानेके बाद ही मनुष्य विचार-परिवर्तनके लिए तैयार होता है। इसलिए ये तीनो क्रातिया एकसाथ ही की जानी चाहियें। एकके बाद एक क्राति करके अगर रुकेंगे, तो इसी एक बातके कारण हमें असफलताका सामना करना पडेगा। विचार और आचार साथ ही साथ आगे बढते हैं। और इसीलिए इन दोनोको जीवनके दो पख कहा गया है। एक पखके आधार पर कोई पक्षी आकाशमें उड नही सकता।

हम शहर और गावकी बात कर रहे थे। शहरोका अर्थ है रुधा हुआ जीवन घनी वस्ती, कबूतरखानो जैसे मकान, सकरी गलिया और गदे मुहल्ले। खेतो, बगीचो, वनस्पति, पशु-पक्षी और खुले आकाशका अभाव। सारी चीजें बाजारमें जाकर खरीदना। पैसेके बिना कोई काम हो ही नही सकता और पैसा हो तो सब कुछ मिल सकता है ऐसी मान्यता। ऐसे जीवनका नाम शहर है। इस स्थितिको सुधारनेके सदियोसे निरन्तर प्रयत्न चल रहे हैं। उनमें सफलता भी मिलती है। फिर भी शहरका जीवन यानी रुधा हुआ जीवन, यह दोष तो दिनोदिन बढता ही जाता है। शहरका जीवन 'जीवन-विहीन जीवन' है, ऐसा वर्णन हमें पसन्द नही आयेगा, परन्तु इसमें जरासी भी अतिशयोक्ति नही है। शहरी जीवनको सुधारनेका एक ही उपाय है। वह यह कि पहले गावोको सुधारा जाय। शहरो पर गावोका जो आधार है उसे कम किया जाय और जीवनके लिए सच्चे अर्थमें उपयोगी सारी सुविधायें गावोमें पहुचा दी जाय। गावोकी सस्कृति यदि सुधर जाय, अद्यतन हो जाय, तो शहरोकी समस्या अपने-आप हल हो जायगी।

जब कभी संपत्तिके समान बटवारेकी बात निकलती है तब एक सीधा और सच्चा प्रश्न यह पूछा जाता है—'सबमें समान रूपसे बांटी जा सके इतनी संपत्ति हमारे पास है कहां? दरिद्रताका समान बटवारा करनेसे भला किसका लाभ होगा?'

इसलिए संपत्तिके बटवारेकी बात तभी की जा सकती है, जब हमने पर्याप्त मात्रामें सम्पत्ति उत्पन्न की हो। और यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि अधिक सम्पत्ति तभी उत्पन्न होगी जब कुशलतासे संपत्ति उत्पन्न करनेवाले लोग देशमें अधिक संख्यामें हों तथा संपत्तिको आधार देनेके लिए हमारे पास पूरा कच्चा माल भी हो या हमने उसे उत्पन्न किया हो। और यह सब तभी संभव होगा जब हम बहुतसे लोगोंको तालीम दें, उनमें संपत्ति उत्पन्न करनेका रस पैदा करें और कच्चा माल तथा तैयार माल एक-दूसरेको पहुंचानेवाले लोगोंमें शत्रुता नहीं परन्तु आत्मीयता उत्पन्न करें।

विज्ञान, संगठन तथा परस्पर आत्मीयता इन तीनोंके मेलसे ही अब हम मनुष्यकी दरिद्रताको मिटा सकेंगे तथा दिनोंदिन बढ़ती जा रही जनसंख्याके प्रश्नको हल कर सकेंगे।

और अब केवल संपत्ति बढ़ानेके उद्देश्यको नजरके सामने रखनेसे काम नहीं चलेगा। संपत्ति प्राप्त करनेके बाद अन्तमें जो सुविधायें, सुख, आराम और संस्कृति हम प्राप्त करना अथवा विकसित करना चाहते हैं, उनके लिए हम अलग योजना और अलग प्रवृत्ति निर्माण करें? जीवनकी प्रवृत्ति ही ऐसी क्यों न हो, जो जीवनकी सारी आवश्यकतायें पूरी करे?

यहां हमारे सामने एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है। आज तक हमने अपनी अधिकांश प्रवृत्तियां व्यक्तिगत पुरुषार्थके जोर पर चलाईं। संपत्ति उत्पन्न करना, ज्ञान प्राप्त करना, अनुसंधान करना, समाज-सेवा करना, त्याग करना — इन सबके पीछे व्यक्तिकी प्रेरणा, व्यक्तिका पुरुषार्थ और व्यक्तिका संतोष रहता था। इसमें दूसरोंकी सहायता तो ली जाती थी, परन्तु मजदूर, कारीगर या कारकुनके रूपमें, सहयोगियोंके रूपमें नहीं।

ऐसी समूची व्यवस्थाको आजकल 'प्राइवेट सेक्टर' कहा जाता है।

समाजवाद तथा साम्यवाद इस व्यवस्थाका विरोध करके प्रजाकी सम्मतिसे स्थापित सरकार द्वारा लोक-कल्याणके सारे कार्य करना चाहते हैं। इसमें व्यक्तिके हाथमें नहीं परन्तु समष्टिके प्रतिनिधियोंके हाथमें सपूर्ण सत्ता रहती है। और केन्द्रीकरणके सारे दोष देखते ही देखते उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। आजकी सरकारें इसे 'पब्लिक सेक्टर' कहती हैं। परन्तु वास्तवमें यह 'स्टेट सेक्टर' है। इस सरकारी सेक्टरमें कल्पना सरकारी, योजना सरकारी, उसे व्यवहारका रूप देनेवाले लोग भी सरकारी होते हैं और सारा नियत्रण एक सरकारी केन्द्रमें होता है। इसमें लोगोकी सूझ-बूझ, लोगोंके उत्साह तथा लोगोंकी व्यवस्थाके लिए कोई अवकाश नहीं होता।

इन दोनोंसे भिन्न विकेन्द्रित परन्तु सहकारी व्यवस्था चलानी हो, तो उसे 'पब्लिक सेक्टर' कहा जायगा। वही सच्ची सार्वजनिक व्यवस्था होगी। जितने लोगोंको किसी व्यवस्थाका लाभ मिलनेवाला हो वे स्वयं उस व्यवस्थाका विचार करें, अच्छी योजना बनायें, ऐसा तत्र खडा करें जिसमें सबके प्रयत्नोके लिए मौका हो तथा मालिक और नौकर, सेव्य और सेवक, शासक और शासित, राजा और प्रजाका द्वैत यथासभव रहने ही न दें। ऐसी व्यवस्थाको ही सार्वजनिक व्यवस्था कहा जा सकता है।

इस व्यवस्थामें कुनबा, परिवार, जाति, धर्म, पथ या सम्प्रदाय जैसे सकुचित और एकांगी सगठनके लिए कोई अवकाश नहीं हो सकता। आदर्श व्यवस्था यह होगी कि किसी स्थान या प्रदेशमें रहनेवाले सारे लोग आपसके विचार-विनिमयसे तथा परस्पर सहकारसे सामुदायिक जीवनका निर्माण करें और उस योजनाको चलानेके लिए आवश्यक शक्ति समाजमें ही पैदा करें।

इस प्रकारकी आदर्श व्यवस्थाकी अपनी सस्कृति भी सर्वकल्याण-कारी तथा सर्वोदयी होगी।

संतोंका वचन है : 'घट घट बसता राम रमैया'। इस सिद्धान्तका स्वीकार करके छोटे-बड़े सभी व्यक्तियोंका जिसमें समान समादर हो, ऐसी यह व्यवस्था होगी। उसमें सबकी सुख-सुविधाका आदर होगा, सबकी सुविधाओंका ध्यान रखा जायगा और सबकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की जायगी।

ऐसी समाज-व्यवस्थामें मजदूरोंका संगठन अलग, कारखानोंके मालिकोंका अलग तथा ग्राहकोंका अलग — इस प्रकारके संघर्ष-मूलक संगठनोंके लिए कोई अवकाश हो ही नहीं सकता। "सब कोई अपने अपने स्वार्थोंके लिए जागरूक रहें और उनकी समान बलवाली खींचा-तानीसे सबकी सुविधाओंकी रक्षा हो"— इस प्रकारकी कल्पनाको जड़से नष्ट कर दिया जायगा। मैं जिसकी सेवा लेता हूं वह हर प्रकारसे सुखी रहे, उसकी सर्वांगीण उन्नति हो, ऐसी सोचनेकी भावना मुझमें क्यों न होनी चाहिये? और मैं स्वयं जिसकी सेवा करता हूं उसे हर प्रकारका संतोष दूं, ऐसा यजमान और अतिथिका सम्बन्ध मैं क्यों न स्वीकार करूं? खींचातानी, संघर्ष और दाव-पेंच क्या मनुष्यकी मनुष्यताके लक्षण हैं? परिवारमें तो हम ऐसा वातावरण नहीं रखते। यजमान और अतिथिके बीच जब हम ऐसा सम्बन्ध पसन्द नहीं करते, तो सहकारी और समृद्ध जीवन जीनेके लिए जितना सहकार आवश्यक है उतने व्यापक संगठनमें प्रेम और सेवाका आदान-प्रदान करनेका वातावरण हम क्यों न उत्पन्न करें?

हमारा सामान्य नियम ऐसा होना चाहिये कि जितने लोगोंके साथ [illegible] अपना जीवन आत्मसात कर सकें उतने ही लोगोंके साथ सेवाका आदान-प्रदान करें। हम सब भोजन बनानेवाले, कपड़े धो देनेवाले, पाखाना साफ करनेवाले और रास्ता वगैरा साफ करनेवाले लोग हमारे सहकारी और जीवनके साथी बन जायेंगे। यही सच्ची क्रान्ति है। ये सब लोग एक-दूसरेके उपयोगके लिए प्रयत्न करनेवाले तथा परिश्रम करनेवाले होंगे, इसलिए ये ही एक-दूसरेके स्वजन माने जाने चाहिये। इसमें धर्मभेद, वर्णभेद आदि कृत्रिम भेद बाधक नहीं हो सकते।

आज तक हमने अपनी धर्मभावनाके अनुसार अपना संगठन किया। अब हम अपने व्यापक सामाजिक जीवनके अनुरूप अपनी धर्मभावनाकी रचना करेंगे अथवा उसका विकास करेंगे। यही अहिंसाका, प्रेमका, परस्पर आदरका और आत्मीयताका मार्ग है।

ऐसे कुदरती और सांस्कृतिक जीवन-संगठनके साथ जिस प्रकार शोषणकी नीति नहीं टिक सकती, उसी प्रकार रुंधा हुआ शहरी जीवन भी नहीं टिकेगा और परस्पर उपेक्षाका सूखा हुआ जीवन भी नहीं टिक सकेगा।

अब हम एक दूसरी दृष्टिसे इस प्रश्नका विचार करेंगे। सहकारके अभावमें मानव-जीवन संभव नहीं होता। इसीलिए तो मनुष्य समाजकी स्थापना करता है। इस सामाजिक जीवनका विकास करने, परस्पर सहकार सिद्ध करनेके मुख्य साधन दो हैं: (१) भाषा और (२) स्थानांतर करने यानी लोगोंसे मिलनेके लिए जाने-आनेकी सुविधा। इसीलिए एक भाषावाले लोगोंका अपने-आप एक अलग प्रदेश बन जाता है। और जो लोग एक-दूसरेके पास जा सकते हैं, वे आपसमें अपने अनुभवोंका, सेवाका और जीवनका आदान-प्रदान करते हैं। इनमें से भाषावार क्षेत्र सहकार और पुरुषार्थके अनुसार विशाल अथवा संकुचित होता है।

आजकल हम यह तो समझने लगे हैं कि सामाजिक संगठनमें भाषाका कितना प्रभाव होता है, परन्तु इस बातका हम तटस्थ वृत्ति रखकर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार नहीं कर पाते। भावनाके वश होकर हम इस सारे प्रश्नको उलझा देते हैं।

परन्तु इस प्रश्नको हम यहीं छोड़ दें।

एक-दूसरेसे मिलने-जानेके मुख्य साधन तो रास्ते ही हैं। जब तक पैदल यात्रासे अधिक सुविधायें जीवनमें नहीं थीं तब तक सुबह रवाना होकर शाम तक घर लौट आनेवाले गांवोंके बीच ही यथाशक्ति दैनिक सहकार स्वाभाविक था। इसे लोग पचकोसी कहते थे। आगे चलकर जब बैलगाड़ी आई और पक्के रास्ते बने तब यातायात बढ़ा। दैनिक सहकारका क्षेत्र भी बढ़ा।

परन्तु यात्राकी बड़ी कुदरती सुविधा नदीके प्रवाहके कारण मनुष्यको प्राप्त हुई। किसी एक नदीके कारण जिन लोगोंका सम्बन्ध बंधा, उनका जीवन एक, उनकी संस्कृति एक। जहा खेती और यात्रा दोनोंका आधार नदी पर होता था वहा नदी-मातृक संस्कृतिकी स्थापना होती थी।

अब नदीका स्थान रेलमार्गने ले लिया है। केरल और कोंकणमें जिस प्रकार आम रास्तोंके दोनो ओर मीलो तक मकान बनते हैं और गाव तथा शहर बसते हैं, उसी प्रकार भविष्यके शहर यदि रेलमार्गके दोनो ओर लम्बाईमें बसाये जायं, तो आजकी घनी बस्ती कम हो जाय और सब शहरोंके लिए 'आगे रेल और पीछे खेत' वाली व्यवस्था सुलभ हो जाय।

बड़े शहरोंका स्वभाव ही शोषणका अर्थात् हिंसाका होना है। और गाव शहरोंके आश्रित बनकर शहरोंके भक्ष्य बन जाते हैं। रेलकी सुविधासे यदि शहरोंकी आबादीको कम किया जाय और गावोंके संगठनको विशाल और जीवन-व्यापी बनाया जाय, तो शहरों और गावोंका भेद ही न रहे। और आज जो रेलमार्ग शोषणकी नसें बन गये हैं, वे शोषणकी नसें न रहकर पोषणकी रक्तवाहिनियां बन जाय।

इस प्रकार यदि देशके नेताओंकी चित्तवृत्ति अहिंसक अर्थात् शोषण-विरोधी बन जाय, तो विज्ञानकी दी हुई सुविधाएं प्रजाहितके लिए सहायक हो जाय और विज्ञानके आधार पर विकेन्द्रित होते हुए भी समृद्ध अहिंसा-परायण संस्कृतिकी स्थापना हो, जिसमें आजके वर्ग-मूलक द्वन्द्वोंका नाम भी न रह जायगा।

ऊपर मैंने जिस एक बातका थोड़ा इशारा किया है, उसे विस्तारसे समझना आवश्यक है। मैंने स्टेट सेक्टर और पब्लिक सेक्टरका जो भेद बताया है, उस भेदको नई संस्कृतिकी स्थापनाके लिए अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। सामान्य जनताके समझनेके लिए यदि एक सूत्र देना हो, तो कहा जा सकता है कि भावी सर्वोदयी, अहिंसक संस्कृतिकी योजनायें सरकारी नहीं परन्तु सहकारी होंगी। सरकारी प्रवृत्तिमें हम राजनीतिक और कानूनी शक्ति पर आधार रखते हैं, जिसे टिकाये

रखनेके लिए पुलिस और सेनाका खर्च बढाना अनिवार्य होगा। परन्तु प्रजाकी प्रेरणा और सामाजिक सद्‌गुणोंके विकाससे यदि हम सहकारी प्रवृत्तिया चलाये, तो उनमें वर्ग-विग्रहके बजाय आत्मीयताका और प्रेमपूर्ण सेवाका ही वातावरण रहेगा। विज्ञानका उपयोग अध्यात्म-परायण मानवताके विकासमें सहायक होगा और आज जिसे हम 'इंटिग्रेशन' कहते हैं वह अद्वैत अपने-आप सिद्ध हो जायगा। 'इंटिग्रेशन' का अर्थ है अपूर्णांकके सहयोगसे उत्तरोत्तर बढनेवाले पूर्णांक। अन्तमें जहा पूर्णत्व है वही शाति, सामर्थ्य और समृद्धि होगी। इस नवीन संस्कृतिका हम गहरा चिन्तन करते जाय और प्रत्यक्ष प्रयोगोंके द्वारा अद्वैत सिद्ध करते जाय, यही मानव-जातिका आजका युगधर्म है।

२६–१–'६२ काका कालेलकर
गोवा जाते हुए
'साबरमती' स्टीमरमें

अनुक्रमणिका

अद्वैत योगकी नवीन संस्कृति — काका कालेलकर ३

१. संस्कृति ३–३२

आजके गावोंका चित्र ३; दुरवस्थाके कारण ४; राष्ट्रको गाधीजीकी सबसे महान देन ५; कर्म शिक्षा-मूलक और गौरवपूर्ण हो ६; (१) स्वरोजी ६, (२) सामाजिक प्रतिष्ठा ६; (३) नीरसताका सवाल ८; (४) किसान ९, (५) कारीगर १०, (६) स्त्रिया १२, निवासकी स्थिति १३, सामाजिक वातावरण १७, (१) अन्त्योदय १७; (२) सामाजिक सुरक्षा १९, (३) स्वास्थ्यकी योजना २०; (४) शिक्षाकी व्यवस्था २०; (५) निश्चित रोजगारी २१; (६) सामाजिक व्यय २१, मनुष्यके समग्र विकासका उद्देश्य २२, उच्चतर सगठन २६; उच्च वर्गों और जनतामें सामजस्य २८, नया सन्तुलन ३०; सामाजिक प्रभाव ३१, सास्कृतिक विकास ३१

२. उच्चतर सगठन ३३–८४

नये सतुलनके साथ विस्तार ३३; समाजवादी कल्याण-राज्यके बदले सहकारी पचायती राज्य ३४, स्वाश्रयी और सहकारी क्षेत्र ३४, सुशृखलित व्यवस्था ३५, गावोमें उत्पादक ही उपभोक्ता है ३६, सयुक्त सगठन द्वारा न्याययुक्त व्यवहार ३७, ढाचा ३८, वित्त-व्यवस्था ४०, राज्य सहकारी मडल ४०, (१) गाधीजीकी सागरवृत्तवाली समाज रचना ४१, (२) कार्य-पद्धतियोंका क्रमिक सुधार ४३, (३) अर्ध-विकसित ग्राम-अर्थव्यवस्थाका विकास ४६, (४) विशिष्ट सेवाओका प्रबध ४९, (५) सुविधाओं और सेवाओंका प्रबन्ध ५०, (६) परिवारोंकी अनेकविध प्रवृत्तिया ५१, (७) सामाजिक सुरक्षाका प्रबन्ध ५३, शिक्षा और बाल-कल्याण ५४, स्वास्थ्य और

सफाई ५४; रोजगारीकी निश्चित व्यवस्था ५४; सामाजिक खर्च ५५; (८) व्यवसाय-विभाजन ५५; (९) फसलोंका आयोजन ५८; (१०) बाजार ५९; (११) ज्ञानका विस्तार ६०; (१२) सांस्कृतिक अलगावसे उद्धार ६२; (१३) परस्पर आदर-भाव ६३; सहकारी खेती ६३; सहकारी खेतीकी प्रेरणा ६५; (१) अर्थ-व्यवस्थाके विकासके लिए मनुष्यका विकास करो ६५; (२) रोगके उपचारके बजाय रोगीका उपचार करो ६५; (अ) सांस्कृतिक अपील ६६, (आ) साधनहीनोंकी अपील ६७; (इ) कारीगरोंकी अपील ६७; (३) आदर्श केन्द्रका निर्माण ६८, (४) पूरक संगठन ६८; (५) सर्वांगीण कार्यक्रम ७१, विवादका विषय ७२; (१) वास्तविकता ७३, (२) वर्ग-संघर्ष ७४; (३) परिवारकी स्वतंत्रता ७६, (४) प्रेरणा ७८, सबके लिए प्रेरणा ७९; (५) सेवा-सहकारी समितियां तथा सहकारी खेती ८०, सामाजिक सेवाओंकी व्यवस्था ८१; सहकारी खेतीके स्पष्ट लाभ ८२; (१) साधन-संपत्तिका संपूर्ण उपयोग ८२, (२) रोजी और उद्योग-धंधोंकी रचना ८३, (३) सामाजिक सुमेल ८३

३. कार्यक्षम औजार ८५–१०४

विज्ञान दुधारी तलवार है ८६; मनुष्यको यंत्रोंका स्वामी बनना चाहिये ८८; (१) यंत्रसे मानवका श्रम कम होना चाहिये ८८, (२) यंत्रका कानून ८९, (३) सच्चे अतिरिक्त उत्पादनका विनिमय ९१, (४) समग्र दृष्टि ९२, (५) सामाजिक भावना ९३, (६) आत्म-विकासका ध्येय ९४; विकासशील अर्थ-रचना ९४, (१) वैज्ञानिक जीवन-स्तरका विचार ९४, (२) खपत और उत्पादनको प्रोत्साहन देना ९७, (३) संपूर्ण रोजीका प्रश्न ९८,

(४) रोजीका लक्ष्य जीवन-वेतन ९९; कामका उचित समय-पत्रक १००; कामका गौरव १००

परिशिष्ट

१. इज़रायलके किबुत्ज १०५–१११

योजनाबद्ध गाव १०५; किबुत्ज क्या है? १०५; प्रारंभ और विकास १०६; किबुत्जकी रचना १०६; आयोजन १०७; कामका प्रकार १०७; वार्षिक उत्पादन १०८, पूजीकी व्यवस्था १०९; सामाजिक वातावरण १०९, शिक्षाकी व्यवस्था ११०

२. चीनी कम्यून ११२–१२०

क्षेत्रीय आयोजनका एक उदाहरण ११२; कम्यूनोंका आरम्भ ११२; कम्यूनोंका विधान ११३; योजना ११५; उत्पादन ११६, वेतन ११७, जीवन-पद्धति ११७, सरकारी मार्गदर्शन ११७; दो उदाहरण · (१) क्षान चुआ ११८; (२) कुशिन कम्यून ११९

३. विभिन्न घटकोंके लिए प्रक्रिया और प्रवृत्तियोंके विभाजनका नमूना १२१–१२३

४. कमेलपुरके अर्थतंत्रकी स्वावलम्बनकी प्रक्रिया १२४–१३०

कोष्ठक १ योजनाके साधनोंका संक्षिप्त विवरण १२८, कोष्ठक २ गावकी आयका क्षेत्रवार विभाजन १२८, कोष्ठक ३ योजना-कालमें आयके अनुपातमें वार्षिक पूजी-नियोजनकी मात्रा (१९६०–६१ से १९६४–६५) १३०, कोष्ठक ४ योजना-कालमें आयके अनुपातमें वार्षिक पूजी-नियोजनकी मात्रा (१९६५–६६ से १९६९–७०) १३०

५. १३१–१३३

कोष्ठक १ विभिन्न क्षेत्रोंमें मानव-शक्तिका उपयोग १३१, कोष्ठक २ यन्त्रशक्तिके उपयोगके कारण मानव-शक्तिमें परिवर्तन १३२, कोष्ठक ३ दस वर्षके योजना-कालमें कमेलपुर गावके धंधोंकी रचना १३५

बलवान सेनाकी अपेक्षा भी एक वस्तु अधिक बलवान है — वह है परिपक्व विचार।

— विक्टर ह्यूगो

विज्ञान और उच्च कोटिके संगठनकी सहायतासे होनेवाले कार्यके आन्तरिक मूल्य पर आधारित हमारी भावी ग्राम-संस्कृतिका समय अब पक चुका है।

ग्राम-संस्कृतिका अगला चरण

१

संस्कृति

आजके गांवोंका चित्र

भारतीय गांवोंकी वर्तमान स्थिति विकास और प्रगतिकी नहीं, परन्तु नैराश्यकी है। इसका कारण यह है कि ग्राम-संस्कृति गतिशून्य बन चुकी है। बाहरी दुनियासे उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। ग्राम-समाजका संगठन टूट रहा है और काम करनेके पुराने तरीकोंमें सुधार नहीं हो रहा है। ग्रामवासी जीवन-यापनके लिए संघर्षमें पड़ा रहता है और उसकी आधीसे ज्यादा शक्ति जीवन-निर्वाहकी प्रारंभिक आवश्यकताएं पूरी करनेमें ही खर्च हो जाती है, जीवन-स्तरको ऊंचा करनेके लिए कोई शक्ति शेष नहीं रह जाती। फिर सांस्कृतिक प्रगतिकी तो बात ही कहां आती है? नये जमानेकी सुविधाएं और साधन गांवमें उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार भौतिक परिस्थिति प्रतिकूल है, और सामाजिक भी अनुकूल नहीं है। गांवमें जो विशिष्ट वर्ग था वह अभी तक भूस्वामियोंका था, अब छोटे पूंजीपतियोंका हो रहा है, जो ग्राम-निवासियोंके शोषण पर जीवित रहता है या फिर शहरोंमें जाकर बस रहता है। जातिप्रथा, जो पहले समाजको श्रेणीबद्ध करके किसी अंश तक प्रगतिमें सहायक होती थी, अब समाजको विभक्त करती है, और ऊंच-नीचकी भावना पैदा करती है। इस प्रकार ग्रामनिवासी चक्कीके भौतिक और सामाजिक दोनों पाटोंमें पिस रहा है। वह अपने पुराने धंधे पुराने ही ढंगसे करता जा रहा है और संसारके प्रगतिशील प्रवाहसे वह पृथक् पड़ा हुआ है। जानकारी वृद्धिका कोई प्रभाव उसके काम पर नहीं पड़ रहा है। परिवार और जाति पर आधारित ग्राम-संगठनका पुराना ढांचा भी ढीला पड़ गया है। गांव अब केवल पड़ोसमें

रहनेवालोका घटक मात्र रह गया है। उनके एकताके सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गये है। उपरोक्त प्रतिकूल परिस्थितियो पर ग्रामवासीका कोई काबू नही है। और न वह उन्हे समझ पाता है। वह उस मनुष्यकी भाति है जो यह नही जानता कि उसे कहा जाना है और क्या करना है।

दुरवस्थाके कारण

ग्राम-जीवनकी इस शिथिलता, शोषण और अलगावका कारण वे परिस्थितिया है, जिनके कारण यहाके साधन और अवसर सीमित और सकुचित हो गये है। निर्माणका अभिक्रम गावके खास खास लोगोमें ही रह गया है और उनसे भी गावके विकासमें बहुत थोडा योग मिलता है। इस कारण गावके जन-साधारणकी भी निर्माण-शक्ति अत्यत सकुचित रह गई है। यदि उनमें यह निर्माण-शक्ति जाग्रत हो, तो आजकी निर्धनताके स्थान पर सम्पन्नता बढ सकती है।

मानव-इतिहासमे भिन्न-भिन्न युगो अर्थात् काष्ठयुग, पाषाण-युग, धातुयुग, विद्युत-युग और अब अणुयुगका क्रमशः विकास हुआ है। उससे एक सबक हम सीख सकते है। एक युगके बाद दूसरे युगके विकासका अर्थ यह नही है कि प्रकृतिके साधन पहले कम थे और अब बढ गये, बल्कि यह है कि मनुष्यके मस्तिष्ककी ग्रहण-शक्ति बढती गई है। काष्ठयुगमें भी आगामी युगोके सारे तत्त्व मौजूद थे, परन्तु मनुष्य उनको धीरे धीरे ही समझ सका। जैसे-जैसे उसे प्रकृतिकी शक्तियोका रहस्य मालूम होता गया वह उनको उपयोगमें लाता गया। प्रकृति-प्रदत्त पदार्थो और शक्तियोका मानवीय हितके लिए उपयोग करना ही सम्पत्तिका उत्पादन है। अत उसका सीधा सम्बन्ध मनुष्यकी अपनी ग्रहण करनेकी शक्तिके विकाससे है। हर मनुष्यमे यह शक्ति अर्तानिहित है और जितना उसका विकास होगा, उतना ही ससारमें सम्पत्तिका प्रादुर्भाव होगा। आज ससारमें जो दरिद्रता और अभाव है, उसका कारण यह है कि थोडेसे विशिष्ट लोगोमे यह शक्ति जागृत हुई है और जन-समूहमे सोयी पडी है। कुछ अल्पसख्यक शक्तिशाली लोगोंके बल

पर समाज न तो सम्पन्न हो सकता है, न सुखी। यदि हरएक मनुष्यको कार्य करनेका अवसर मिले, तो ही समाज सुखी और सपन्न हो सकता है। सामाजिक समानताके आदर्शका भी यही लक्ष्य है। सामाजिक समानता प्रत्येक व्यक्तिको उसकी शक्तिके अनुसार काम करनेका अवसर और सुविधा देती है, जिससे वह सामाजिक सम्पन्नतामें अपना योग देता है। हमें प्रत्येक रोगीकी व्यक्तिगत चिकित्सा भी करनी होगी और सामान्यत रोगको मिटानेके लिए समाजकी स्थितिको भी बदलना होगा। अर्थात् ग्रामनिवासी और ग्राम-परिस्थिति दोनोंका एकसाथ सुधार करना आवश्यक है। तभी गावोंमें वर्तमान शिथिलताके स्थान पर प्रगति और जागृतिकी स्थिति पैदा होगी।

राष्ट्रको गांधीजीकी सबसे महान देन

गांधीजी कहा करते थे कि राष्ट्रको उनकी सबसे बड़ी देन नई तालीम है। उन्होंने समझ लिया था कि नई तालीम ही मनुष्यके विकासकी कुंजी है। उन्होंने उसमें जीवनके प्रत्येक क्षणमें व्यक्तित्वके विकासकी पद्धति देखी थी। विकास कर्मकी प्रतिक्रियाके अनुसार होता है। मनुष्यकी क्रिया ऐसी होनी चाहिये कि उसकी प्रतिक्रिया उत्तम हो। क्रियासे होनेवाले लाभोंको दो भागोंमें बांटा जा सकता है। एक तो उससे मनुष्यके ज्ञानका और उसके गुणोंका उत्कर्ष होना है, इसे हम उसका आन्तरिक मूल्य कहेंगे। दूसरे, उससे भौतिक उत्पादन बढ़ता है, यह उसका बाह्य मूल्य है। यदि मनुष्य आंतरिक मूल्यको लक्ष्यमें रखकर काम करता है, तो बाह्य मूल्य उसे स्वत. प्राप्त हो जायेगा। परन्तु यदि वह केवल बाह्य मूल्य पर ध्यान रखता है, तो आन्तरिक मूल्य भी नहीं मिलेगा और बाह्य मूल्यमें भी कमी आवेगी। मनुष्यका कर्म बाह्य रूपमें तभी लाभप्रद होता है जब उससे आन्तरिक लाभ भी पहुंचे। इससे मनुष्यके समग्र विकासके सिद्धान्तका प्रतिपादन होता है। जिसका आन्तरिक गुण-विकास हुआ है, उसे प्रायः भौतिक अभाव भी नहीं रहेगा। जन-साधारणका गुण-विकास हो जाये तो उन्हें भी विशिष्ट वर्गसे हानि पहुचनेकी कोई आशंका

नही रहेगी। उनमें और वर्ग-विशेषमें जो अन्तर अथवा विषमता है, वह भी स्वयं कम हो जायेगी और वर्ग-विशेषके नेतृत्व और मार्ग-दर्शनकी आवश्यकता भी उन्हे न रहेगी।

कर्म शिक्षामूलक और गौरवपूर्ण हो

१. स्वरोजी

मनुष्यके कर्मकी प्रतिक्रिया कर्ताके रुख पर निर्भर है और इस बात पर भी कि काम किस स्थितिमें किया गया है। प्राय. तो कामकी स्थिति ही निर्णायक होती है। यदि मनुष्य अपना ही काम करता है, यदि उसकी स्थिति एक स्वाधीन कर्मीकी होती है, तो उसे ज्यादा गौरवका अनुभव होता है। वह अपनी सपूर्ण शक्ति लगाकर कामको सफल बनानेकी चेष्टा करता है, अतएव उसके व्यक्तित्वका विकास भी होता है। परन्तु यदि वह दूसरेके अधीन हो तो उसके अभिक्रम नष्ट हो जाते हैं। वह कमसे कम काम करेगा और हीनताकी भावना महसूस करेगा। स्वाधीन-कर्मी (self-employed) मनुष्यकी दृष्टि आन्तरिक मूल्यो पर रहेगी, लेकिन किसीके मातहत काम करनेवालेकी दृष्टि केवल बाह्य मूल्य पर होगी। इस प्रकार कार्यकी स्वाधीनतासे — स्वरोजीसे ही कर्तृत्वके गौरवकी रक्षा होती है और शैक्षणिक मूल्य भी उसीमें होता है। कार्यकर्ताके विकासके लिए यह आवश्यक है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि सहकारी सगठनमें काम करना भी स्वाधीन कार्य करने जैसा ही है। सहकारी पद्धतिमें स्वरोजीके मूल तत्त्वके साथ सगठनका लाभ भी हमें मिलता है।

२. सामाजिक प्रतिष्ठा

अगर मनुष्य ऐसे काममे लगा रहता है जिसको समाज हीन मानता है, तो उस कामकी प्रतिक्रिया उसके विकासमें बाधक होती है। वह उसके गौरव और स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वासको घटाती है, और वह अपमानका अनुभव करता है। प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाके कारण उस काममे वह लगा भले ही रहे, परन्तु उसका आन्तरिक

गुणोत्कर्ष नहीं होगा। समाजके लिए वह काम चाहे जितना आवश्यक और उपयोगी हो, परन्तु आमदनी और इज्जतकी कसौटीमें उसका मूल्य कम ही रहेगा। महाभारतमें कर्णकी कथा इस सामाजिक सत्यका स्पष्ट उदाहरण है:

> सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
> दैवायत्तम् कुले जन्म मदायत्तम् तु पौरुषम्॥

समाजके तिरस्कारके विरुद्ध कर्णका यह रोषपूर्ण प्रतिवाद सर्वथा न्यायसंगत है। समाजमें कितने ही कर्ण हैं, जिनका जिनका कोई अपराध न होते हुए भी उनका व्यक्तित्व कुचल दिया जाता है। गांवोंमें काम करनेवाले कारीगर चमार, मोची, कुम्हार, धोबी और विशेषकर अन्त्यज हरिजनोंकी आज यही स्थिति है। कर्णकी कथासे हम सबको एक सबक मिलता है। सस्ते सामाजिक मूल्योंके कारण किसीके व्यक्तित्वको कुचला नहीं जाना चाहिये। ऐसा नहीं होना चाहिये कि समाज निहित स्वार्थोंकी सिद्धिका साधन बन जाय। कर्णके जैसी स्थितिमें जो लोग पड़े हैं उनको अपना उच्चतम आत्म-विकास करनेका खुला अवसर और सुविधा मिलनी चाहिये, ताकि समाजके कल्याणमें वे अपना योग-दान कर सकें।

जो हीन प्रकारके काम या पेशे हैं, उनको करनेवालोंका सामाजिक स्तर नीचा माना जाता है। यह दोष कामकी रीति और तरीकोंके सुधारसे ही दूर हो सकता है। असलमें यही एक उपाय है जिससे सामाजिक समस्या हल हो सकती है। मनुष्यकी सेवामें विज्ञानका उत्तम उपयोग हो सकता है और होना चाहिये। काम और पेशोंके स्वरूपको विज्ञान इतना बदल सकता है कि वे स्वच्छ और सम्मानप्रद बन जायें। उदाहरणके लिए, हम पाखाना-सफाईके प्रश्न पर विचार करें। यह सफाई एक बहुत जरूरी सेवा है। क्या इस कामके लिए पृथक् भंगीवर्ग होना चाहिये? यदि हां तो उसकी सामाजिक स्थिति क्या होनी चाहिये? क्या समाजकी एक जरूरी सेवा करनेके लिए उसके स्तरको सदाके लिए नीचा करार दिया जाय? यह बात तो समझमें आती है कि पाखानेकी स्वच्छताको कायम रखनेके लिए सफाईका एक पृथक् आयोजन

किया जाय। उस दशामें सेवाके इस आयोजनको हीन और तुच्छ नहीं मानना चाहिये, जैसा अभी माना जाता है; बल्कि उसे एक ऐसी विशिष्ट सेवा बना दिया जाना चाहिये, जिसमें विशेष ज्ञान और तालीमकी अपेक्षा होती है। समाजकी इस जटिल समस्याका हल यही है कि सफाईके कामको एक विशिष्ट काम बना दिया जाय। यदि यह रूपान्तर हो गया तो भंगीका पेशा शायद खाद-निर्माणका एक स्वतन्त्र उद्योग बन जायेगा। यह तभी संभव हो सकता है जब भंगीको उसका विशेष प्रशिक्षण दिया जाय और गांवके खादके साधनोंमें वृद्धि करने और स्थानीय कूड़े-करकटसे भिन्न भिन्न प्रकारकी खाद तैयार करनेके वैज्ञानिक साधन मुहैया किये जाय।

इस प्रकार ज्ञान और वैज्ञानिक साधनोंसे सम्पन्न होने पर उस भंगीके स्वाभिमानमें वृद्धि होगी और गांवकी नजरमें भी उसका स्थान ऊंचा उठेगा। खेतीकी पैदावार बढ़ाने और सफाईका स्वास्थ्यप्रद वातावरण पैदा करनेवाले एक प्रमुख कार्यकर्ताके रूपमें गांव उसको मान्यता और महत्त्व देगा और उसे समुचित अर्थोपार्जनकी सुविधा देगा। वह गोबरसे गैसप्लान्ट चलानेवाली योजनाका संचालक बनेगा, जिससे तैयार खादके अलावा ईंधनके लिए गैस मिल जायगी। इस स्थितिमें कामके आंतरिक मूल्य अर्थात् गुण-विकास पर भी उसकी नजर रहेगी, जिससे उसका पेशा और ऊंचा उठ जायगा।

३. नीरसताका सवाल

गांवके लगभग सभी पेशोंके आन्तरिक मूल्य, जिनसे काम करनेवालोंका गुणोत्कर्ष होता था, आज समाप्त हो गये हैं। केवल स्थूल और भौतिक मूल्य रह गये हैं। अतएव उनमें कोई आनन्द नहीं रह गया है और परिणाम-स्वरूप वे भाररूप बन गये हैं। अतएव कोई आश्चर्य नहीं है कि ग्राम-समुदायमें अपने पैतृक पेशोंको छोड़नेकी प्रवृत्ति पैदा हो रही है। किसान नहीं चाहता कि उसका लड़का उच्च शिक्षा पाकर खेती करे। कारीगर भी ऐसा ही सोचता है। स्त्रियां भी घरके चूल्हा-चक्कीसे फुरसत पाना चाहती हैं। पढ़ी-लिखी लड़की या सपन्न

परिवारको लड़कोंका विवाह-सम्बन्ध वहां किया जाता है जहां शारीरिक श्रम कम करना पड़े। सभी वर्गोंमें बालकोंको शिक्षा देनेकी प्रवृत्ति तो बढ़ रही है। परन्तु यदि शिक्षित व्यक्ति अपने घरेलू पेशोंको छोड़ते जाय, तो वह स्थिति पैदा होगी जिसमें मूल व्यवसायोंकी उपेक्षा होगी या वे अशिक्षित लोगोंके हाथमें ही रह जायंगे। पेशोंका ह्रास तो होगा ही, शिक्षित वर्ग सर्जनात्मक कार्यसे वंचित रह जायेगा। यह स्थिति बड़ी भयावह है और इसको सुधारनेके लिए मौलिक और व्यापक प्रयत्नकी आवश्यकता है। इस समस्याका केवल एक ही हल है कि इन हीन माने जानेवाले कामोंको शिक्षाप्रद बनाया जाय। विज्ञान और व्यवस्थाकी सहायतासे उनका स्तर ऊंचा उठाया जाय, ताकि उनके द्वारा व्यक्तित्वका विकास हो सके।

४. किसान

खेतीके कामको कृषि-विद्यालयके फार्मके नमूने पर संगठित करना चाहिये। जिस तरह विद्यार्थी कृषिके अपने सैद्धान्तिक ज्ञानके परीक्षणके रूपमें खेतोंमें काम करता है, उसी तरह किसान भी खेतीका काम ऐसे करे मानो किसी प्रयोगशालामें कृषि-विज्ञानकी भिन्न शाखाओं जैसे, जीव-विज्ञान, भूमि-रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र, यन्त्र-विज्ञान, समाजशास्त्र आदिका अध्ययन कर रहे हों। इस तरह काम किया जाय तो काम करनेवालेके व्यक्तित्वके विकासका प्रभाव भौतिक उपजकी वृद्धिमें दिखाई देगा। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसानोंका सांस्कृतिक विच्छेद मिट जायेगा और समाजके प्रगतिशील ज्ञानसे उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क हो जायेगा। ऐसे ज्ञानप्रद और लाभप्रद पेशेको कोई शिक्षित किसान छोड़ना नहीं चाहेगा। और उपयुक्त साधनों और औजारोंके द्वारा तथा सहकारी खेतीमें शामिल होकर वह खेतीमें होनेवाली मौजूदा बड़ी मेहनतसे बच जायगा। चूंकि श्रमका उपयुक्त विभाजन होगा, इसलिए वह खेतीका काम एक व्यवस्थित समय-विभागके अनुसार कर सकेगा। आजकल शिक्षित मनुष्यको इस प्रकारके सुव्यवस्थित समय-विभाजनकी सबसे बड़ी चाह है। दिन और

रात धंधेमें लगा रहना, जिसमें सांस्कृतिक कार्यके लिए विश्राम न हो, उसके लिए बहुत कष्टकर है। ज्ञानके लिए भी उसकी उतनी ही भूख है जितनी भोजनके लिए और शिक्षित किसानकी इस आवश्यकताकी पूर्ति सुव्यवस्थित समय-विभाजनके द्वारा हो सकती है।

यदि किसान कृषिको अपनी बुद्धिके विकासका माध्यम समझ ले, तो वह केवल कच्चे मालका उत्पादन नहीं करेगा। वरन् स्थानीय कारीगरोंकी सहायतासे वह उसे पक्के मालमें बदलनेकी कोशिश करेगा। यदि किसान केवल कच्चा माल पैदा करके उसे बेच देंगे, तो वे उद्योगके बाह्य और आन्तरिक दोनों मूल्योंसे वंचित रहेंगे। आन्तरिक मूल्यसे इसलिए वंचित रहेंगे कि उन्हें अपनी बुद्धि और क्रियाशक्तिके उपयोगका पूरा अवसर नहीं मिलेगा। पूरा अवसर तो पक्का माल बनानेकी क्रियामें ही मिलता है। उदाहरणके लिए, महुआके बीज एकत्र करनेमें किसानको अपनी बुद्धिका क्या प्रयोग करना पड़ता है? परन्तु महुआसे तेल निकालनेकी प्रवृत्तिमें महुआ एकत्र करनेसे अधिक बुद्धिका उपयोग होगा और महुआके तेलसे साबुन बनानेमें और भी अधिक बुद्धि और शक्तिका उपयोग होगा। शिक्षित किसान उनके प्रयोगका अधिकसे अधिक अवसर चाहता है। जितनी कुशलता किसी वस्तुके उत्पादनमें लगी है उसीके अनुसार उसका स्थूल मूल्य आंक लिया जायेगा। साबुन बनानेवालोंको तेल निकालनेवालेकी अपेक्षा और तेल निकालनेवालोंको महुआके बीज एकत्र करनेवालेकी अपेक्षा अधिक हिस्सा मिलेगा। कच्चे माल और पक्के मालके मूल्योंमें अन्तर होनेका यही कारण है। जो लोग कहते हैं कि प्रारंभिक उत्पादनको अधिक पुरस्कार मिलना चाहिये, क्योंकि वह समाजकी बुनियादी आवश्यकता-को पूरा करता है, वे मूल्यांकनके उपरोक्त सिद्धान्तको भूल जाते हैं। किसानको समसूल्य या अधिक पुरस्कार केवल कच्चे मालको स्वयं पक्का बनानेमें ही मिल सकता है।

५. कारीगर

अब हम ग्रामीण उद्योगोंके अर्थशास्त्रको समझ सकेंगे। उनसे किसानकी अपेक्षा कारीगरका ज्यादा सीधा वास्ता है। अतएव जैसे जैसे

ग्रामोद्योगोंका ह्रास होता गया है वैसे वैसे ये कारीगर बेकार मजदूरोंकी श्रेणीमें दाखिल होते गये हैं, और जीवनके बाह्य और आन्तरिक दोनों मूल्योंसे वंचित होते गये हैं। कभी कभी उनको कुछ फुटकर काम मिल जाता है, जिससे केवल कुछ स्थूल लाभ प्राप्त होता है। उनके पेशेमें कोई स्थिरता नहीं रह गई है। इसलिए वे अपने उद्योगका विकास नहीं कर सकते, उसकी परम्पराओंका निर्माण नहीं कर सकते। उनकी सन्तानको अपने उद्योगकी परम्पराओंकी विरासत नहीं मिलती, जिससे वे जीविकाकी तलाशमें यहां-वहां भटकते रहते हैं। इस तरह उनकी परम्परागत संस्कृति नष्ट हो गयी है। अर्थ-व्यवस्था मनुष्यके लिए है, मनुष्य अर्थ-व्यवस्थाके लिए नहीं है। मनुष्यको आन्तरिक अथवा पूर्ण विकाससे वंचित रखनेका कोई अधिकार अर्थ-व्यवस्थाको नहीं है; और न केवल बाह्य या भौतिक मूल्योंके लिए मनुष्यको काममें जोतनेका उसे अधिकार है। इस कारण यदि ग्रामनिवासियोंको अर्थ-व्यवस्थाका दास हम नहीं बनाना चाहते, तो ग्रामीण उद्योग-धन्धोंको नष्ट नहीं होने देना चाहिये। विज्ञानकी सहायतासे उनकी प्रक्रियाओंमें सुधार करना चाहिये। ऐसा नहीं करेंगे तो विज्ञान ग्रामवासियोंके विकासमें बाधक बन जायगा।

इसलिए कच्चे मालको पक्का बनानेकी स्थानीय प्रक्रियाको कायम रखते हुए कारीगरके श्रमके बोझको हल्का करना चाहिये। अपने कामकी अमुक क्रियाओंमें यंत्रशक्ति दाखिल करनेसे यह लक्ष्य सिद्ध हो सकता है। इस बातकी चर्चा हम बादमें विस्तारसे करेंगे। यहां तो इतना ही कहना है कि कारीगर केवल भौतिक उत्पादनकी दृष्टिसे रखकर काम न करे, अपने कौशल और ज्ञानमें वृद्धि करनेकी दृष्टि भी रखे। उसे केवल कारीगर ही नहीं, कलाकार भी होना चाहिये। वह अपने व्यवसायका इंजीनियर बने। उनको यंत्रकलाकी शिक्षा मिले और उसका कारखाना उस ज्ञानकी वृद्धिके लिए प्रयोगशाला बने, ताकि अपने व्यवसायके नये नये तरीकोंको वह ग्रहण कर सके। यदि उसीमें उसको एक इंजीनियरकी कुशलता और सम्मान मिल गये, तो वह दूसरे कामों या नौकरीकी क्यों तलाश करता फिरेगा? अपने व्यवसायमें ही उसकी ऊंची-से-ऊंची आकांक्षाओंकी पूर्ति हो सकेगी।

६. स्त्रियां

कहावत है कि जो हाथ पालना झुलाता है वही ससार पर राज्य करता है। यह स्त्रियोका विशेषाधिकार है। स्त्रियोके घरके भीतरी तथा बाहरी कार्यो एव कर्तव्योकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये, जिससे कि वे अपने अधिकारको प्राप्त कर सके। एक स्त्रीको इतनी योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये, जिससे कि वह अपने बच्चेको राज्य करने अथवा दूसरे शब्दोमें ससारकी सेवा करनेकी तालीम दे सके। बालकोके व्यक्तित्वको ऊचा उठानेके लिए उसे बाल-मनोविज्ञानका समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। उसे समाजशास्त्रका ज्ञान होना भी आवश्यक है, जिससे कि वह बच्चेको बदलते हुए सामाजिक वातावरणमें रहने योग्य बना सके। उसे ससारके जीवन-स्रोतोंसे भी संपर्क स्थापित करना चाहिये, ताकि वह अपने बच्चेको जीवनमें जिम्मेदारियां उठाने योग्य बना सके। पारिवारिक जीवनको अधिक समृद्ध बनानेके लिए उसमें कलाका प्रेम भी होना चाहिये। यदि ग्रामीण स्त्रियोंको भी ऐसा बनाना है, तो उनकी जीवन-पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि समस्त दिशाओमें विकास करनेका उन्हे मौका मिले। उनके कार्मोका आयोजन इस प्रकारका होना चाहिये, जिससे कि उन्हें इन गुणोंको प्राप्त करनेके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण मिल सके। उन्हे रसोई-घरको पुष्टिप्रद भोजनकी प्रयोगशालाके रूपमें तैयार करना चाहिये। उन्हें शाक-भाजीकी बाडी लगाना चाहिये और इस तरह लगाना चाहिये कि उसके द्वारा वे बच्चोको वनस्पति-शास्त्रका प्रारंभिक ज्ञान दे सके। उनको गृह-प्रबन्ध इस प्रकारसे करना चाहिये, जिससे कि रोजमर्राके काम करनेके घण्टे कमसे कम हो सके और शेष समयमे वे ग्राम-समाजके लिए कामकी जिम्मेदारियाको अपने ऊपर ले सके। बर्तनोको साफ करनेके उपयुक्त तरीके निकालने चाहिये, ताकि कम परिश्रमसे सफाई हो सके। संयुक्त परिवार प्रथाके टूटनेसे अब परिवारमे श्रमका विभाजन सभव नहीं रह गया है, इसलिए कुछ कार्य जैसे कपड़े धोना, आटा पीसना इत्यादिका प्रबन्ध ग्रामस्तर पर संयुक्त रूपमें करना चाहिये, जिससे कि प्रत्येक परिवारका कार्यभार कम हो सके। अलग-अलग व्यक्तियो द्वारा

अलग अलग गो-पालनकी प्रथाको एक ग्रामीण डेरीमें परिणत कर देना चाहिये तथा साथ ही साथ सहकारी खेतीको भी अपनाना चाहिये। गृह-जीवनकी यह पुनर्व्यवस्था स्त्रियोका बोझ हलका कर देगी और उन्हे ऊपर लिखे हुए आन्तरिक गुण-विकासके लिए काफी मौका और समय प्रदान करेगी।

निवासकी स्थिति

जिस प्रकारसे आत्माके लिए शरीर है, उसी प्रकार मनुष्यके लिए घर है। जैसे आत्माकी उन्नतिके लिए शरीर एक साधन है (शरीरमाद्य खलु धर्म-साधनम्), उसी प्रकार घर मनुष्यके रहन-सहन और वातावरणका स्वरूप निश्चित करता है। मनुष्य पर उसके रहन-सहनका वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा उसके कामके वातावरणका। यदि उसका रहन-सहन गदा और निकृष्ट हो, तो उसकी कलात्मक प्रवृत्ति मन्द पड जाती है। जो मनुष्य अधिक समय तक गदे वातावरणमें रहता है, वह उसका आदी हो जाता है और उसकी दृष्टिको वह बुरा नहीं मालूम होता। और अपने निवास-स्थानसे भी उसको इतना मोह हो जाता है कि गावके बाहर आकर्षक स्थान मिलें, तो भी वह उसको नही छोडना चाहता।

हमारे अधिकाश गावोकी यही दशा है। वहाके रहन-सहनमें ग्रामवासीकी योजक बुद्धिके अभाव और जडताकी प्रतिच्छाया पड रही है। पीढी-दर-पीढी उनका ह्रास हो रहा है। मकान बनानेमें न कोई विचार होता है और न योजना। जनसख्याकी वृद्धिके साथ बढने हुए परिवारके लिए गावकी सीमा बढाकर नये मकान बनानेके बजाय मौजूदा मकानको ही बढा दिया जाता है। उसमे परिणाम यह होता है कि वायुका सचार रुक जाता है और रास्तेकी जगह घिर जाती है। प्राय पशुशालाको ही रहनेके कमरेमें परिवर्तित कर दिया जाता है और लोग उन्हींमें पशुओंके साथ रहते हैं। परिणाम यह होता है कि नालियोंके प्रबन्धकी गुजाइश नही रहती और न स्नानघर, पेशाब-घरकी व्यवस्था रहती है। शौचालय बनानेकी तो पद्धति ही नहीं है। और

जब गाव छोटा था तब चारो ओर जो खुली हुई जगह इस काममें आती थी वही आबादी बढने पर भी उस कामके लिए उपयोगमें आती रहती है। नतीजा यह होता है कि सारा वातावरण बदबूसे भरा होता है और वह मच्छर व मक्खियो तथा अन्य कीटाणुओंकी वृद्धिका कारण बन जाता है। इस प्रकारके रहन-सहनका गाववालो पर दूषित प्रभाव होता है।

यदि ग्रामवासीके मन और शरीर पर उसके रहन-सहनका अच्छा प्रभाव उत्पन्न करना हो और उसके मकानको एक वास्तविक विकासका साधन बनाना हो, तो यह आवश्यक है कि उसे इस स्थितिसे तुरन्त हटाया जाय; तभी वह गावकी मौजूदा अव्यवस्थाकी जगह सुव्यवस्था उत्पन्न कर सकता है। अधिकाश गावोंका तो पूराका पूरा ढाचा ही बदल देना पड़ेगा। समस्या इतनी उलझ गई है कि थोड़े-बहुत फेरफारसे काम नही चलेगा। ऐसे आमूल परिवर्तनके लिए ग्रामवासीका मानस तैयार करनेके लिए हमें प्रभावशाली उपायोंकी खोज करनी चाहिये। एक उपाय यह हो सकता है कि उनके सामने नये गावका आदर्श चित्र पेश किया जाय। सारे गावके सामने ऐसा चित्र रखना चाहिये और प्रत्येक परिवारको बताना चाहिये कि उसको अंगीकार करनेसे उनके रहन-सहनमें कितना सुधार हो जायगा। यदि थोड़े परिवारोंमें भी अपने हितकी भावना जाग्रत होती है, तो प्रारभ अच्छा ही समझना चाहिये। यदि गावमें सौभाग्यसे कल्पनाशील और उदार नेतृत्व मौजूद है, तो गावका पुनर्निर्माण बहुत शीघ्र हो सकता है। चमेलपुरमें इन आधारो पर गावकी पुनर्रचना आरम्भ हो गई है। अपने पुराने मकानोके मोहके कारण स्थलोंके पारस्परिक आदान-प्रदानमें बड़ी कठिनाई पड़ी और बहुत गरीब आदमियोंको नया मकान बनानेके लिए सहायता भी देनी पडी। नये नकशेके मुताबिक प्रत्येक परिवारको उसके मकानके लिए काफी विस्तृत जमीन दी गयी है। इससे सारे गावका रूप ही बदल जायगा। दो-तीन सालके अल्पकालमें ही चमेलपुरका नव-निर्माण हो जायगा जो आसपासके गावोंको भी पर्याप्त प्रोत्साहन और अनुकरणकी प्रेरणा मिलेगी।

दूसरे सघन क्षेत्रोंके कुछ गावोंमें भी मकान और स्थलोंका आदान-प्रदान करके गावोंकी पुनर्रचनाका कार्यक्रम आरंभ किया गया है। सौराष्ट्रमें वाडला और डेडकडी गावोंमें भी इस दिशामें संतोषजनक प्रगति हुई है। गुजरातमें सागटाला क्षेत्रके दमवा ग्राममें पिछले दो सालमें करीब ५० मकानोंका पुनर्निर्माण हुआ है और अगले दो सालोंमें पूरे १०० मकान इसी प्रकार बन जायेंगे। परन्तु दमवा गावकी समस्या बिलकुल ही दूसरी थी। जगलमें स्थित एक आदिवासी गाव होनेके कारण वहा पर स्थानके सकोचका कोई प्रश्न ही नही था। अपने अपने खेतोंमें मकान बने हुए थे। परिवारोंका सम्पर्क अपनी भूमि तथा पशुओंसे ही था। सामाजिक सम्पर्क बहुत थोडा था। गावके हितमें मिल-जुलकर काम करने-की बात तो कैसे हो सकती थी? इसलिए सस्कृतिका विकास नही हो रहा था। इसलिए दमवा गावने समुदायमें मकान बनानेका निश्चय किया और उसमें वह सफल हुआ। कुछ सहायता स्थानीय बैंकसे मिली। परन्तु मुख्यत अपने ही साधन व अभिक्रमसे परिवारोंने अपने नये मकान बनाये। निवासियोंमें आत्म-गौरवकी एक नई भावना पैदा हुई है और वे अपने नये मकानोंकी शोभाके अनुकूल ही व्यवहार करना चाहते हैं। नये मकानोंका उनके निवासियो पर अच्छा प्रभाव पडता है।

ग्रामकी पुनर्रचनामें कुछ बुनियादी सुविधाए देना आवश्यक है। उसका नक्शा ऐसा होना चाहिये जिसमें काफी बडे साइजके प्लॉट हों, ताकि सामने अहातेमें फुलवाडी लगाई जा सके और पीछे साग-भाजीकी वाडी। इस साग-भाजीकी वाडीसे कई उद्देश्य पूरे होंगे। स्नानघर और रसोई-घरका सब पानी उसमें खप जायेगा और पेशाब-घर और पाखाना भी वहा बन जायेगा जिससे स्वच्छता रहेगी। इसके सिवा इस खाद और पानीकी सहायतासे वह परिवारको काफी साग-सब्जी और फल भी देगी। इस प्रकार परिवारके भोजनमें पोषक तत्त्वोंकी वृद्धि होगी। इससे भी बडा प्रयोजन यह पूरा होगा कि यह छोटासा उद्यान बच्चोंको वनस्पति-शास्त्रका ज्ञान करानेके काम आयेगा। पिछवाडे साग-सब्जीकी वाडी और सामने अहातेमें फुलवाडीसे परिवारको कलात्मक दृष्टिका विकास होगा।

नये गावमें पशुशाला गावके बाहर होनी चाहिये। गावके अन्दर, विशेषकर मकानोंके अन्दर, पशुओंको रखनेमें गन्दगी बढ़ती है। स्वच्छताके प्रश्नके अतिरिक्त यदि मनुष्य और पशु चौबीस घंटे एकसाथ रहे, तो गृहस्थिका विश्राम नहीं होता। आवास-स्थलसे पशुओंका दूर होना गाय और ग्रामवासी दोनोंके हितमें आवश्यक है। महाराष्ट्रके मुण्ड सघन क्षेत्रके करकटा गावमें पशुशाला गावके बाहर रखनेकी प्रथा है, जिसके लिए गावके बाहर पृथक् स्थान नियत है, जहा परिवार अपने पशुओंको बाधते है और उनकी देखभाल करते हैं। इसमें उनको कोई असुविधा नही होती। गावके सारे पशु बाहर रहनेसे गाव सहज ही स्वच्छ रहता है। करकटाके उदाहरणसे लाभ उठाकर कानपुरके निकट पुखराया सघन क्षेत्रके एक गाव गौरमें भी यही व्यवस्था की गई है और गावके बाहर सम्मिलित पशुशाला बनाई गई है। सौराष्ट्रमें बाडला गावने भी गावके बाहर संयुक्त गोशाला बनानेका निश्चय किया है। सघन क्षेत्रोंके जिन गावोमे सहकारी कृषि-समितिया बनी है, वहा सारे बैल इकट्ठे कर लिये गये हैं और एक ही स्थान पर रखे जाते हैं। इस प्रकार सहकारी कृषिसे सहकारी दुग्धशालाकी ओर हम बढते हैं। सहकारी दुग्धशाला और संयुक्त पशुशालाके द्वारा गोबर गैसप्लाट लगानेमें आसानी होती है, जिससे ईंधन मिलता है और गावको उत्तम खाद भी मिलती है। इस गैसप्लाटमें गावका कूडा-कचरा सब काम आ जाता है और उसकी खाद-सम्पत्ति बढ जाती है। गैसप्लाटके बिना खादका ईंधनके रूपमें होनेवाला उपयोग रोका नही जा सकता। इस प्रकार सम्मिलित दुग्धशाला और संयुक्त पशुशाला गावोंको दुहरा लाभ पहुचाती हैं। उनसे पशुओंकी नस्लमें जो उन्नति होती है, उस पर हम विस्तारपूर्वक आगे विचार करेंगे।

गावोंकी नवरचनामें एक काम धुए और धूलके सवालोंको हल करनेका भी है। धुएको रोकनेके लिए हरएक घरमें निर्धूम चूल्हा दाखिल करना चाहिये। सौराष्ट्रके शाहपुर सघन क्षेत्रमें इस चूल्हेका काफी अच्छा प्रचार हुआ है। यह चूल्हा गावका कुम्हार आसानीसे बना लेता है। धूलका सवाल ज्यादा टेढा है, लेकिन गलियो और

रास्तोंको पक्का करके तथा नालियोंकी समुचित व्यवस्था करके उसे भी हल किया जा सकता है। जिन गांवोंमें पानीकी बहुतायत हो, वहां पानी सींचनेकी टंकीसे युक्त बैलगाड़ीकी व्यवस्था करके सड़कों पर पानीका छिड़काव किया जा सकता है और धूलका उपद्रव टाला जा सकता है। इस नये गांवमें आदर्श योजनाके अनुसार बनाया गया एक खेलका मैदान भी होना चाहिये जहां गांवके बालक और वयस्क स्वास्थ्यके लिए पोषक स्वच्छ वातावरणमें खेल सकें।

ग्राम-संस्कृतिके इस अगले चरणमें पारिवारिक जीवन और उससे सम्बद्ध प्रवृत्तियोंका पुनर्गठन करना भी आवश्यक होगा। परिवारोंका और खासकर स्त्रियोंका दैनिक कार्यक्रम ऐसा होना चाहिये कि उसमें सभ्य जीवनकी सभी आवश्यकताओंके लिए समय मिलता रहे। इस दृष्टिसे कुछ कार्य सामूहिक रूप पर करना वांछनीय होगा। इन प्रवृत्तियोंको चलानेके लिए गांवमें एक सार्वजनिक परिश्रमालय खोलना होगा। इस परिश्रमालयका उपयोग ऐसे स्थानके रूपमें भी किया जा सकता है, जहां स्त्रियां हररोज घंटे-दो घंटेके लिए अमुक दस्तकारियोंका अभ्यास करने या दूसरी सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंमें हिस्सा लेनेके लिए इकट्ठी हुआ करें।

गांवोंकी यह कल्पना तब तक पूरी नहीं कही जा सकती जब तक गांवके बाहर उपयुक्त स्थान चुनकर स्वच्छ पाखाने न बनाये जायें। इसके सिवा गांवके कुओं पर यथास्थान पुरुषों और स्त्रियोंके लिए स्नान-घर और कपड़े धोनेके लिए धोबीघाट भी बनवाना चाहिये और जहां वे बनाये जायें वहां गंदे पानीके निकासके लिए नालियोंकी समुचित व्यवस्था भी होनी ही चाहिये।

सामाजिक वातावरण

१. अन्त्योदय

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः उस पर सामाजिक परि-स्थितियोंका भी उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना उसके अपने कार्योंका। दोनोंकी उस पर समान गहरी छाप अंकित होती है। किन्तु सार

सरीखी छोटी सामाजिक इकाईमें शांति, सुख और समृद्धि खंडित अवस्थामें टिक नहीं सकती। पं० नेहरूने अभी कुछ दिन पहले कहा था कि यह नहीं हो सकता कि आधा संसार समृद्ध रहे और आधा दरिद्र, आधा स्वतंत्र रहे और आधा गुलाम। गांव सरीखी छोटी इकाईमें यह बात और भी अधिक लागू होती है। गांवके वे लोग, जिनकी सामाजिक और आर्थिक रूपमें उपेक्षा होती है, सम्पूर्ण गांवके लिए भार और खतरा सिद्ध होते हैं।

उनमें से कुछ अपराधी मनोवृत्तिके हो जाते हैं और गांवकी शान्ति और नैतिकताको भंग कर देते हैं। उनसे ग्रामीण जीवनकी स्थिरता भंग हो जाती है और वे गांवमें पार्टीबन्दी और दलबन्दी पैदा कर देते हैं। इस तरह गांवके जीवन पर वे बुरा प्रभाव डालते हैं। इस स्थितिमें ग्रामवासीके लिए विकासका अनुकूल वातावरण नहीं होता। इसलिए अपने हितमें उसे इस स्थिति पर विचार करना पड़ेगा। प्रेसिडेन्ट आइज़नहोवरने कहा है कि इस अगले उत्थानके लिए जो कुछ किया जाय वह दान नहीं पूंजीका हितकर विनियोग-मात्र है। इसलिए गांवके उन लोगोंका उत्थान, जिनकी हमने उपेक्षा की है या जिन्हें दबाया है, हमारे ही हितकी बात है। क्योंकि उससे गांवका सामान्य स्तर ऊंचा होगा।

इस तरहसे गांवके विकासके अनुकूल सामाजिक वातावरण पैदा करनेके लिए अंत्योदय बहुत आवश्यक है। अंत्योदयका लाभ पूंजीके विनियोगसे भी कुछ बढ़कर है। गांवके सम्पन्न लोगोंको उससे अपनी निष्क्रियता छोड़कर अपना जीवन-स्तर और ज्यादा अच्छा बनानेकी प्रेरणा मिलेगी। सघन क्षेत्रोंके कुछ गांवोंमें, जहां अंत्योदयका प्रयास किया गया है, यही अनुभव आया है। उदाहरणके लिए, कमेरपुरमें एक हरिजन परिवारके लिए गांवके मध्यमें पक्का मकान बनानेके लिए पूरे गांवने योग दिया। गांवके अधिकांश मकान कच्चे हैं जिनमें मिट्टीकी दीवालें और फूसके छप्पर हैं। हरिजनके पक्के मकानसे दूसरे परिवारोंको प्रेरणा मिली और आज दो वर्षके भीतर सभी ग्रामवासियोंने सारे गांवमें पक्के मकान बनाना तय

कर लिया है। लगातार चार साल तक फसल खराब होती रही। केवल इस वर्ष फसल अच्छी हुई और गांवने अपने ही साधनोंसे दस पक्के मकान बनानेका निर्णय किया है। अगर फसल अच्छी रहे तो अगले कुछ सालोंमें सारा गांव पक्का हो जायेगा और हरएक घरका अच्छा नक्शा होगा। गांवके उपेक्षित अंगके उत्थानके लिए ग्राम-नेताओंके इस प्रयत्नसे उन्हें एक दूसरा पुरस्कार यह मिला। उनसे उनके दिल और दिमागके गुणोंका विकास हुआ है। साहस और आत्म-विश्वास भी उनमें पैदा हो गया है, जिसके द्वारा उन्होंने सम्मिलित सहकारी खेती भी आरम्भ कर दी है, जिसमें मनुष्य-श्रम, पशु, धन, साधन-सामग्री और भूमि सब एकत्र कर दिये गये हैं।

२. सामाजिक सुरक्षा

मनुष्यका विकास तभी संभव है जब वह भयमुक्त हो। यदि सुरक्षा न हो और निश्चिन्तता न हो तो उसका मन हमेशा अशांत रहता है और अपने विकासके लिए आवश्यक एकाग्रता नहीं रहती। वह चिन्ता और भयमें डूबा रहता है। उसकी शक्तियां छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और वह विक्षिप्त रहता है। इसी स्थितिमें उसमें संग्रहकी वृत्ति और अन्य असामाजिक वृत्तियां पैदा हो जाती हैं। अरक्षा और अभाव-जनित भय मनुष्यके विकासमें बाधक होता है। इसलिए स्वस्थ विकासके लिए मनुष्यको पूर्ण सुरक्षा मिलनी चाहिये। तभी उसमें आत्म-विश्वास, स्वाभिमान और सामाजिक जिम्मेदारीकी भावना पैदा हो सकती है। यह समाजका धर्म है कि वह व्यक्तिको सुरक्षा दे। प्रत्येक मनुष्यको अपने समुदायमें वैसी ही सुरक्षाका अनुभव होना चाहिये जैसा कि माकी गोदमें बच्चेको होता है। व्यक्तियोंकी नीति-निष्ठा कायम रखनेके लिए उन्हें ऐसी सुरक्षा देना समाजका कर्तव्य है। शकुन्तला नाटकमें कालिदासने अपनी प्रजाके प्रति राजाका यह कर्तव्य माना है

येन येन वियुज्यन्ते प्रजा स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्॥

राजा दुष्यन्तने यह घोषणा की थी कि उनकी प्रजामें जिसका प्रिय बन्धुओंसे वियोग हो जाय, उनके स्वजनकी पापरहित पूर्ति राजा

करेगा। दुष्यन्तकी यह घोषणा प्रत्येक ग्राम-समाजकी घोषणा होनी चाहिये।

सुरक्षासे मनुष्यकी नैतिकता बढती है। समाजके साथ उसका सम्बन्ध सुधरता है। यदि प्रत्येक व्यक्तिको उसकी न्यूनतम आवश्यकताओ और विकासके लिए समान अवसरका आश्वासन हो, तो संघर्ष और हिंसाकी भावना कम हो जाती है। सुरक्षासे मनकी वृत्ति विधायक बनती है और सहकारिता तथा बन्धुत्वकी भावना पैदा होती है। सहकारिताके आधार पर ही ग्राम-समाज अपनी सुविधाओंको बढानेके लिए अपने साधनोंका समुच्चय कर सकता है।

सघन क्षेत्रोंमें चिन्तामुक्तिके नामसे सामाजिक सुरक्षाका कार्यक्रम ग्राम-आयोजन द्वारा सतोषजनक रीतिसे पूरा किया जा रहा है। इस उद्देश्यसे ग्राम-आयोजनमें नीचे दिया जा रहा चतुर्मुखी कार्यक्रम शामिल किया गया है: (१) स्वास्थ्य, (२) शिक्षा, (३) रोजगारीकी गारटी और (४) सामाजिक व्ययका बटवारा।

३. स्वास्थ्यकी योजना

ग्राम-समाजके प्रत्येक सदस्यको डाक्टरी सहायता पहुंचानेकी दृष्टिसे स्वास्थ्यकी एक ऐसी योजना स्वीकार की जाती है, जिसमें सब थोडा थोडा योग दें। हर परिवारको वस्तु या नक्द पैसे या श्रमके रूपमें एक स्वल्प फीस देने पर सदस्य बना लिया जाता है और साधारण रोगोंके लिए उन्हे निशुल्क डाक्टरी सहायता दी जाती है। विशेष इलाजके लिए थोडी अतिरिक्त फीस ले ली जाती है। जो सदस्यता-शुल्क देनेमें असमर्थ हैं उन्हे भी इस योजनाका लाभ दिया जाता है। हां, स्वास्थ्य-योजनाके निमित्त श्रमदानकी अपेक्षा उनसे की जाती है।

४. शिक्षाकी व्यवस्था

निर्धन बालकोको शिक्षा प्राप्त करनेके लिए पुस्तको, कागज, पेंसिल आदि और स्कूल फीसके रूपमें कुछ दर्जों तक सहायता दी जाती है। अर्थ-व्यवस्थाके और अधिक विकसित होने पर ग्राम-समाज ऐसे

ग्राम-समाज उठने नही पाता, दबा-सा रहता है। साधन एकत्र करके इस प्रकारकी आवर्तक कठिनाइयोका मुकाबला किया जा सकता है। सघन क्षेत्रोमें यह कार्यक्रम अभी आरभ नही हुआ है।

मनुष्यके समग्र विकासका उद्देश्य

गाधीजीने कहा है कि "मनुष्यके खान-पान, पहिनावे और उसके रहन-सहनकी पद्धतिमें उसका व्यक्तित्व, उसका चारित्र्य प्रगट होता है।"

मनुष्यका विकास अपने कार्यके आन्तरिक मूल्योके द्वारा होता ही है, उसके चारित्र्य पर उसके भोगोका भी परिणाम होता है। कार्य और भोग दोनो ही साधन हैं; साध्य तो समग्र विकास है। यदि कर्म बाह्य फलके हेतुसे किया जाता है, तो आन्तरिक विकासमें बाधा उत्पन्न करता है। इसी प्रकार बाह्य सुखके लिए किया हुआ भोग भी विकासके लिए बाधक होता है। लेकिन भोगके द्वारा मनुष्य आत्म-विकासकी अनुकूलता भी उत्पन्न कर सकता है। हमारे जीवन-यापनका स्तर क्या हो और कैसा हो, इसकी यही कसौटी होनी चाहिये। यह स्तर विज्ञान-सम्मत होना चाहिये — न तो अधिक ऊचा और न नीचा।

युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त-स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु खहा॥
गीता ६–१७

गीताके इस श्लोकका भी यही अभिप्राय है। यदि जीवन-स्तर बहुत नीचा हुआ तो मनुष्यके विकास पर उसका कुप्रभाव पड़ता है और जिसे ऊचा जीवन-स्तर कहा जाता है उसका परिणाम भी बुरा होता है। स्तर नीचा होनेसे व्यक्तित्व उठता नही है। ऊचा होनेसे मनुष्य भोगके आतरिक मूल्यसे वचित रह जाता है। वह भोगरत बन जाता है। उपभोग साधनके बजाय साध्य बन जाता है। साधनको साध्य मान लेना ही व्यक्ति और समाजकी गिरावटका सबसे बड़ा कारण हुआ है। कामोपभोग—निस्सीम वासना-भोग मनुष्यके जीवनका

ध्येय बन गया है। उसको कभी तृप्ति नहीं मिलती। समाज पर और खुद पर उसका क्या परिणाम होगा, इसकी चिंता किये बिना उसके पीछे वह दौड़ता रहता है। गीतामें कहा है 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी'—कर्मके अनुसार बुद्धि बनती है। मनुष्य अपने भोगोन्मुख कर्मोंके प्रतिपादनके लिए सिद्धान्त गढ़ने लगता है। वह 'जीवन-संघर्षमें शक्तिशालियोंकी विजय' के सिद्धान्तकी दुहाई देने लगता है। लेकिन यह सिद्धान्त तो जंगलके कानूनका ही दूसरा नाम है। सहयोग और सह-अस्तित्वके स्थानमें वह संघर्ष और प्रतिस्पर्धा दाखिल करने लगता है। व्यापारका उद्देश्य अतिरिक्त उत्पादनका विनिमय नहीं रह जाता, बल्कि मूल उत्पादकका शोषण हो जाता है। विज्ञान और यंत्रविद्याका उपयोग बेगार और परिश्रमके अतिरेकको घटानेके लिए नहीं होता, किन्तु सम्पत्ति और सत्ताके केन्द्रीकरणके लिए होता है। समाजमें जो भी हिंसा और शोषण है उस सबका मूल साधनको साध्य मान लेनेकी — निस्सीम कामोपभोगको अपना ध्येय मान लेनेकी बुराईमें है। उससे जीवनके मूल्योंमें ही विपरीतता आ गई है। भोजन स्वास्थ्यके लिए नहीं किया जाता है, परन्तु स्वादके लिए किया जाता है, जो स्वास्थ्यको नष्ट करता है। जीवनमें बाहरी शान-शौकत और प्रतिस्पर्धाका प्रवेश इसलिए होता है कि दूसरोंकी अपेक्षा हम बड़े माने जायं। अमरीकी अर्थशास्त्री पीगु[1]ने ठीक कहा है "लोग धनी नहीं, अपने पड़ोसियोंकी अपेक्षा अधिक धनी बनना चाहते हैं।" सच्चे अर्थमें 'धनी' शब्दमें 'अधिक धनी' शब्दकी अपेक्षा अधिक सार है। उसका अर्थ सम्पन्न और सोद्देश्य जीवन है, जब कि 'अधिक धनी' निरर्थक और प्रदर्शनमय जीवनका द्योतक है। दूसरेकी अपेक्षा अधिक धनी होनेकी वृत्तिमें अहंकार भरा हुआ है, जो हिंसाका उतना ही बड़ा स्रोत है जितना भिन्न भिन्न हितों और स्वार्थोंका संघर्ष।

मनुष्यके असमय, असन्तुलित विकासका खतरा पहले उतना स्पष्ट नहीं था जितना स्पष्ट आज दिखाई दे रहा है। निस्सीम भोग-वासनाने मनुष्यको स्वार्थ-प्रधान बना दिया है। उसके मस्तिष्कका तो विकास हुआ है, परन्तु हृदयका ह्रास हुआ है। दिमाग जितना बढ़ा है,

१ पी० सी० पीगु : इकॉनॉमिक्स ऑफ वेल्फेअर।

दिल उतना ही छोटा हो गया है। हम उस मंजिल पर पहुंच गये हैं जहां विज्ञानकी उन्नति मनुष्यके कष्टों और दुःखोंको दूर कर सकती है, बशर्ते कि मनुष्य मनुष्यके विरुद्ध उसका प्रयोग न करे। दूसरे शब्दोंमें, मनुष्यका हृदय भी उन्नत हो और मनुष्य-मात्रके साथ सहकार और सह-अस्तित्वकी भावनासे वह विज्ञानका उपयोग करे। अपने बन्धुओंके साथ भोगा हुआ कष्ट सहनीय हो जाता है और सुखभोग तो और भी अधिक आनन्दप्रद बन जाता है। अपने साथियोंके सुख-दुःखमें भाग लेना ही सुखका नियम है। एकाकीपनमें मनुष्य स्वार्थी बनता है। साथियोंके साथ समभागी बननेसे उसका सर्वांगीण विकास होता है।

> स्निग्धजनसंविभक्तं दुःखं सह्यवेदनं भवति।
> स्निग्धजनसंविभक्तं सुखं उन्नतिकर भवति।।

विज्ञानकी उन्नतिने मनुष्यके सम्मुख एक दुविधाकी स्थिति उपस्थित कर दी है। यदि उसका दुरुपयोग न किया जाय तो विज्ञानसे मानवका महान हित हो सकता है। आज विश्वके नेता और मनुष्य-मात्र इस दुरुपयोगको रोकनेका उपाय खोज रहे हैं। उनकी हार्दिक इच्छा है कि विज्ञानका उपयोग मनुष्यकी सेवामें हो, उसके विनाशमें नहीं। इस सम्बन्धमें हमें याद रखना चाहिये कि रोग होने पर इलाज करनेकी अपेक्षा रोगको रोकना ही श्रेष्ठ उपाय है।

> प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।

निस्सीम भोग-विलासका मार्ग रोगकी वृद्धिका मार्ग है। भोगका नियन्त्रण और संविभाजन रोगको रोकनेका उपाय है। यह जीवनकी वह कला है जो मनुष्यके आत्म-संयम पर आधारित है। जीवनकी यह कला मानवका गुणोत्कर्ष करनेवाली है, उसे महान संकटसे बचानेवाली है और उसके द्वारा विज्ञानका पूर्ण लाभ भी मिल सकता है। यदि इस जीवन-कलामें उन्नति नहीं की जाती, तो और सब प्रकारकी उन्नति हानिकर सिद्ध हो सकती है।

> सब नदियां जल भर भर रहियां।
> सागर किस बिध खारी।

जीवनके इस खारेपनका कारण उस कलाका अभाव है, जो सुखोपभोगको संयममें रखकर मनुष्यका समग्र विकास करती है।

हमारी सामान्य जनताका जीवन-स्तर आज इतना नीचा है कि सुखोपभोगको संयममें रखनेकी यह बात अप्रासंगिक जान पड़ेगी। फिर भी हमारी प्रगतिकी दिशा तो निश्चित ही होनी चाहिये। क्योंकि गलत उद्देश्यमें खतरा निहित रहता है और मनुष्यमें मिथ्या महत्वाकांक्षायें पैदा होती हैं। सौभाग्यसे हम एक पुरानी संस्कृतिके उत्तराधिकारी हैं, जिसके परम्परागत मूल्य वही आन्तरिक मूल्य हैं, जिनसे मनुष्यका समग्र विकास होता है। इन मूल्योंकी अस्थायी विस्मृतिके कारण ही हमें भौतिक दारिद्र्यका शिकार बनना पड़ा है। अतएव इन मूल्योंकी पुनः प्रतिष्ठा ही उसके निवारणका एकमात्र उपाय है। हममें से निर्धनसे निर्धन व्यक्तिमें भी इन मूल्योंकी भूख है। अतएव इन मूल्योंके आधार पर हम सहज ही अपनी प्रगतिका निर्माण कर सकते हैं, और भौतिक समृद्धि उसका स्वाभाविक परिणाम होगी।

सघन क्षेत्रोंमें जन-साधारणको भोगोंको सीमित करने व आत्म-संयमकी शिक्षा देनेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस दिशामें जनमनका निर्माण करनेके लिए कुछ मुद्दे लिये जाते हैं, जिनमें झूठे प्रदर्शनकी प्रवृत्तिको रोका जाता है। यदि अतिथि या आगन्तुक प्रातःकाल या सायंकाल जलपानके समय आये, तो ही उसे चाय या अन्य पेय देनेकी प्रथा डाली जा रही है। दूसरे समयों पर ऐसा कोई सत्कार नहीं किया जाता। आहारके सम्बन्धमें अस्वास्थ्यकर खर्चीले व्यंजनोंके स्थान पर पोषक तत्त्वोंकी ओर ध्यान दिलाया जाता है। सादी वेशभूषा पसन्द की जाती है। शादी-विवाहके अवसरों पर होनेवाला खर्च कम हो रहा है, क्योंकि ग्राम-समाज या बिरादरी उसका नियंत्रण करती है और परिवारके साथ उसमें हिस्सा बटाती है। मुरादमें वहाँकी सघन क्षेत्र संस्थाने यह प्रथा डाली है कि भिन्न-भिन्न बिरादरियोंके शादी-विवाह संस्थाके प्रधान केन्द्र-स्थलमें हों। अत्यन्त अल्प किराया लेकर, एक-दो घंटेकी ही सूचना पर वह शादीके लिए सारी सुविधाएं व सामान प्रस्तुत कर देता है। विवाहकी इस प्रथाने व्यक्तिगत परिवारोंको बड़ी राहत

मिल गई है। संस्थागत अनुशासन उनको व्यर्थके प्रदर्शनके भारसे बचा लेता है। उत्सवमें सादगी और शोभा आ जाती है। जो सुविधाए संस्थाकी ओरसे दी जाती हैं वे चाहे अत्यंत धनी परिवारोके स्तर तक न पहुचें, परन्तु अधिकाश परिवारोके स्तरसे अधिक होती हैं। उन परिवारोके लिए यह प्रबन्ध बहुत लाभदायी सिद्ध होता है। विवाहकी यह पद्धति समाजमे बहुत कुछ समानता लाती है।

सघन क्षेत्रके कार्यक्रममें सर्वत्र सविभागके तत्व पर जोर दिया जाता है। आरभ तो इसीसे होता है कि ग्रामनेता सम्पूर्ण समुदायके कल्याणके लिए काम करते हैं। सारे समाजके लिए अपनी बुद्धि, समय, और आवश्यकता पड़ने पर शारीरिक शक्तिका योग देते हैं। अत्योदयके कार्यक्रममें यह सविभाग ज्यादा प्रत्यक्ष दिखाई देता है। सामाजिक सुरक्षाके कार्यक्रमका तो आधार ही सविभाग है। सदस्योकी अपनी-अपनी क्षमताके अनुसार साधन जुटाये जाते हैं और आवश्यकताके अनुसार व्यय किया जाता है। ग्रामोद्योगोमें तो सविभाग आता ही है। और सघन क्षेत्रोमें सहकारी खेतीकी जो प्रथा है, उसमे तो सबसे अधिक सविभाग है। इस प्रकार सघन क्षेत्रोके कार्यक्रम सविभाग और आत्म-सयमकी दृष्टिसे सच्ची दिशामें चल रहे हैं।

उच्चतर संगठन

ग्राम-सस्कृति ऐसी होनी चाहिये जिसमें ग्रामवासियोके सर्वोच्च बौद्धिक और आर्थिक तथा राजनीतिक विकासकी गुजाइश हो। यह तभी हो सकता है जब उन्हे इन सब शक्तियोके उपयोगका अवसर मिले। तीक्ष्ण बुद्धिवाला कोई विद्यार्थी यदि १० वर्ष तक चौथे दर्जेमें ही पड़ा रहे तो कुन्दजहन हो जायगा। पढ़नेमें उसका मन नही लगेगा; वह केवल खानापूरी करता रहेगा। परन्तु यदि वह दर्जा-ब-दर्जा चढता जाय और आगे बढता जाय, तो उसे अपनी शक्तियोके विकासका अधिकाधिक अवसर मिलेगा। सीमित अवसरोके कारण बुद्धि और विकास भी सीमित रह जाते हैं। ग्रामवासीका भी यही हुआ है। शताब्दियोंसे वह दर्जा चारमें ही पड़ा है। बल्कि अभी हालके जमानेमें

तो वह और नीचे उतर गया है। क्योंकि उसमे अपने गावका प्रबन्ध करनेका भी अधिकार छीन लिया गया है। अब उसे केवल अपने परिवारका प्रबन्ध करनेका ही अवसर रह गया है। इसलिए उसका विकास भी अपने कार्यक्षेत्रके मुताबिक ही सकुचित रह गया है। उसका अधिक विकास तभी सभव है जब उसका कार्यक्षेत्र विस्तृत हो। ग्रामवासियोकी मूल समस्या यही है। दूसरी सब समस्यायें इसकी शाखा-प्रशाखामात्र हैं।

हमारे देशमें दो प्रकारके सगठनोका सफल प्रयोग हुआ है। एक तो परिवारका सगठन जो रक्तकी अथवा वशकी एकताके आधार पर टिका है। और दूसरा, आश्रमका सगठन जिसके मूलमें विचारोकी एकता है। परिवारकी इकाई समाजकी बुनियादी इकाई है और सदा बनी रहेगी। परन्तु उसे बृहत्तर सस्थागत इकाईका सहारा देना पड़ेगा। समाजमें आश्रमका भी स्थान है। परन्तु वह कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तक सीमित रहता है। वह पिता और पुत्रको जोडनेवाली कडीका काम नही कर सकता। इसलिए विकासके अगले चरणके लिए ग्रामवासियोको सस्थाकी आवश्यकता है। ग्राम-पचायतके सिवा ऐसी दूसरी सस्था ग्राम सहकारी समिति हो सकती है। वह क्षेत्रीय सहकारी सगठनका अग होगी और ग्राम-समाजको उद्देश्यकी एकताके सूत्रमें बाधेगी। उद्देश्यकी एकता पर आधारित सगठन ही वर्तमान युगकी अपनी सस्था है। जार्ज रसेलने ठीक ही कहा है कि "मानव-समाजका अपने वर्तमान स्तरसे आगेका विकास इसी पर निर्भर है कि उसमें एकताके सूत्रमें बधने और सच्चे सामाजिक सगठन बनानेकी क्षमता हो।"

मानव प्रवृत्तिको ऊचा उठानेके दो मार्ग हैं एक तो है धर्मका भावना-मूलक मार्ग और दूसरा है सस्था और सगठनका मार्ग। अपने देशमें आज दोनो मार्गोका आश्रय हम ले रहे हैं। पहलेकी प्रेरणा हमें विनोबाजीसे मिल रही है और दूसरेकी प० जवाहरलाल नेहरूसे। कोई अपने-आपमें पूर्ण नही है। दोनो एक-दूसरेके पूरक हैं और अभीष्ट परिणामके लिए दोनोका समन्वय आवश्यक है।

मानवीय संस्थायें और संगठन चाहे जितने उत्तम हों वे अपूर्ण ही रहेंगे। गांधीजीने कहा है, "मैं ऐसे सुव्यवस्थित समाजकी कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें मनुष्यको अच्छा होनेकी जरूरत न रह जाये।" धर्म-भावना-प्रधान मार्गमें संगठनका उतना महत्त्व नहीं माना जाता जितना व्यक्तिकी साधनाका। परन्तु नीतिभ्रष्ट समाजमें नीतिमान व्यक्तिकी स्थिति स्वयं स्थायी नहीं होती। वह टिकती नहीं। इस कारण केवल व्यक्तिकी सद्भावना अथवा केवल अच्छी संस्थाओंसे काम नहीं चल सकता। हमें दोनोंकी आवश्यकता है—अच्छे मनुष्यकी भी और अच्छे समाजकी भी। तभी व्यक्तिके व्यक्तित्वका उच्चतम विकास हो सकता है और व्यक्ति तथा समाजके बीच सामंजस्य स्थापित हो सकता है। इस कारण व्यक्तिके विकासके लिए भी और सामाजिक सामंजस्यके लिए भी संस्थागत सुधारका अत्यंत महत्त्व है।

उच्च वर्गों और जनतामें सामंजस्य

ग्राम-विकासकी समस्या हल करनेके लिए समाजके संगठनमें सुधारकी आवश्यकता है। उदाहरणके लिए, डेरी उद्योगको लीजिए। भूमि पर जनसंख्याका भार बढ़ जानेकी वजहसे अधिकांश गांवोंमें पशुओंके चरनेके लिए बहुत कम जमीन रह गई है। किसान अपनी अलग अलग जमीनके लिए — वह कितनी ही छोटी हो — अलग-अलग बैल-जोड़ियां रखते हैं। इस कारण भूमि पर पशुओंका भार इतना बढ़ गया है कि धरतीमें भोजन प्राप्त करनेके लिए मनुष्य और पशुमें प्रतिस्पर्धा है। अलग-अलग किसान अपनी छोटी छोटी जोतोंमें न तो गायके लिए निरन्तर हरे चारेका प्रबन्ध कर सकते हैं और न अच्छे सांडोंका। ग्रामकी कुल जमीन पर सम्मिलित कृषि द्वारा फसलोंका ठीक-ठीक आयोजन करके ही पशु-पालनकी उचित व्यवस्था की जा सकती है और तभी डेरीका विकास हो सकता है। सहकारी डेरीमें पूरे समय काम करनेवाला विशेषज्ञ रखा जा सकता है जो कि व्यक्तिगत गोपालनमें संभव नहीं है। यही बात सघन कृषि-कार्यमें लागू होती है, क्योंकि उसमें अधिक पूंजीकी और उच्च कोटिकी संगठन-शक्तिकी आवश्यकता है। खेती और डेरीकी उपजकी बिक्रीके लिए एक ऊंचे संगठनकी आवश्यकता है। बिक्रीकी

सहकारी योजनाके विना किसानके लिए यह संभव नहीं है कि वह अपने मालका उतना ही मूल्य पा सके जितना औद्योगिक उत्पादनको मिलता है। किसानको वैज्ञानिक तरीकोंका उपयोग करके अपने कच्चे मालका पक्का माल बनानेमें भी सहकारिताकी आवश्यकता है। इस प्रकार उत्पादन बढ़ानेमें सहकारिताकी आवश्यकता है। यहां उत्पादनका अर्थ केवल कृषिकी उपज नहीं, किन्तु डेरीकी, उद्योगकी और पक्के मालकी यानी गावकी सम्पूर्ण उपज है।

गाव और क्षेत्रके स्तर पर अच्छा संगठन बनानेका एक बड़ा लाभ यह होगा कि वर्ग-विशेष और जन-साधारणके बीचका संघर्ष बहुत-कुछ दूर हो जायगा। उच्चस्तरीय संगठन बनानेसे गावके योग्य युवकोंको उपयुक्त कामोंमें लगाया जा सकता है। व्यक्तिगत गोपालनके स्थान पर यदि सहकारी डेरी बने, तो डेरी विशेषज्ञको काम करनेका अवसर मिलता है। इसी प्रकार सहकारी कृषिमें कृषिकी तालीम पाये हुए युवकको लगाया जा सकता है। सहकारी बिक्री व्यवस्था, सहकारी गृह-निर्माण, सहकारी स्वास्थ्य-योजना, सहकारी उद्योग आदि अनेकानेक सहकारी प्रयासोंमें बहुतसे प्रतिभावान युवकोंको गावमें ही काम मिल सकता है। इस प्रकार उत्पादन और सेवाके संगठन शिक्षित युवकोंके लिए आकर्षक होते हैं, उन्हें गावमें ही रहनेका अवसर प्रदान करते हैं और व्यवस्थित जीवनकी सब सुविधायें भी उन्हें देते हैं। गावकी अर्थ-व्यवस्थाका विकास हो तो बहुतसे प्रतिभावान युवकोंकी सेवाओंका उपयोग हो सकता है। और विशिष्ट वर्ग तथा जन-साधारणका भेद मिट सकता है।

गावमें उच्चतर संगठनके विरुद्ध कुछ लोगोंकी दलील यह है कि उससे गावोंमें एक व्यवस्थापकोंका संगठन खड़ा हो जायगा। परन्तु प्रश्न यह है कि व्यवस्थापकोंका वर्ग अच्छा है या उच्चतर संगठनके अभावमें गावोंका विकास रोक देना अच्छा है। गावमें नेतृत्वके विकासकी गुंजाइश होनी चाहिये। उसीके द्वारा गावके विकासकी प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। यदि ग्राम-विकासका सारा कार्यक्रम नई तालीमके अनुसार चलाया जाता है, तो ग्रामवासियोंमें काफी जागृति पैदा हो जायगी और नेतृत्व अपनी शक्तियोंका दुरुपयोग नहीं कर सकेगा। इस

मार्गमें यदि खतरा हो तो भी ग्राम-समाजको ऐसे खतरोंको उठाना चाहिये। विघ्नके भयसे कामको आरम्भ न करना उचित नही है।

उच्चतर सगठनका रास्ता ही निर्माणका रास्ता है। उसीसे ग्रामकी अविकसित अर्थ-व्यवस्था विकसित होगी। उससे विकासमें गति आवेगी और महत्त्वाकाक्षी लोगोको गावमे ही अपनी शक्ति और योग्यताका उपयोग करनेके अवसर मिलेंगे। जो मनुष्य-शक्ति अथवा साधन-शक्ति बेकार पडी है वही हमारी बडी पूजी है; सगठनके द्वारा उसका उपयोग विकासके लिए किया जा सकता है। मनुष्य-शक्तिके उपयोगका मतलब है साधन-विहीन लोगोको साधन-सम्पन्न बनाना; उन्हे काम करनेके साधन और अवसर मुहैया करना। इसमे दानकी बात नही है। यह तो लाभका सौदा है। क्योकि लोग बेकार रहें और उनकी शक्तियोका उपयोग न हो, तो अर्थ-व्यवस्था अविकसित रहती है। कोई यह न समझे कि इस तरह हम मौजूदा सीमित सम्पत्तिका बटवारा करते है। इससे सम्पत्तिका उत्पादन बढेगा। जिनके पास साधन है वे पूजीकी तरह उसका उपयोग करनेके लिए तैयार ही रहते है। उन्हे इस बातकी प्रतीति करा देनेकी जरूरत है कि बेकार साधनोको सक्रिय बनाकर काममे लगा देना पूजीका उत्तम उपयोग है। एक बार यह प्रगति आरभ हो जाय, तो गावको ऐसा स्थानीय नेतृत्व प्राप्त हो जायगा कि सपूर्ण ग्राम-समाज सक्रिय हो उठेगा और साधन-सम्पन्न लोग अनुभव करने लगेंगे कि वे अपने हितका कार्य कर रहे है। स्थानीय साधनोका सम्पूर्ण उपयोग करनेमें उन्हें अधिक सेवा और सुविधाकी सम्भावनाये भी दिखाई पड़ेंगी। उन्हें यह भी दिखाई पडेगा कि साधनविहीन लोगोंके और उनके हित समान हैं। हितोकी इस समानताके आधार पर ग्राम-समाजका निर्माण होगा।

नया संतुलन

गावोमें उच्चस्तरीय सगठनका एक और बडा लाभ यह है कि अर्थ-व्यवस्थामें नये सतुलन स्थापित होगे। सहकारी सगठन द्वारा घर, गाव और क्षेत्रके स्तर पर आर्थिक कार्योंमें सामजस्य स्थापित होता है। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था विशृखल होनेसे बचती है और विकेन्द्रित सहकारी

व्यवस्थाका निर्माण होता है। पूरे क्षेत्रमें ऐसे पारस्परिक संबंध कायम होते हैं, जिनमें व्यक्तिका अस्तित्व संगठनमें खो नहीं जाता। संगठनके सुधारसे केन्द्रीकरण और विशृंखलता दोनोंके बीचमें सन्तुलन कायम होगा। जिस क्षेत्रीय संगठनमें परिवार-इकाई, ग्राम-इकाई और क्षेत्र-इकाईके बीचमें सामंजस्य स्थापित हो, उसमें पूरी रोजगारीके साथ तरक्कीके साधनोंका क्रमिक सुधार सम्भव होगा, क्योंकि वह उपलब्ध मानव-शक्ति और उत्पादनके बढ़ते हुए पैमानेके बीच सन्तुलन कायम रखेगा। आर्थिक और तरक्कीके साधनोंके बीच उपरोक्त सन्तुलन कायम करनेकी प्रक्रियामें क्षेत्रीय संगठन द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों और वैज्ञानिक प्रगतिमें भी समन्वय सम्भव हो सकेगा।

सामाजिक प्रभाव

गांवमें हमारे समुन्नत संगठनका एक अच्छा प्रभाव यह पड़नेकी सम्भावना है कि ग्राम-समाजके विभिन्न अंगोंमें आपसी व्यवहारमें सुधार हो और सामाजिक एकता स्थापित हो। जब किसानका कारीगरसे सीधा व्यवहार होता है, तो जाति-बंधन कायम रहता है। जिस आयोजनमें किसान और कारीगरका व्यवहार अप्रत्यक्ष होता है, वहां जाति-बन्धन ढीला पड़ जाता है। किसान गांवकी सहकारी समितिके मार्फत कच्चा माल देगा और सहकारी समितिके ही मार्फत तैयार माल खरीदेगा। कारीगर भी सहकारी समितिके मार्फत कच्चा माल खरीदेगा या उधार लेगा और तैयार माल भी उसीके मार्फत बेचेगा। अर्थात् किसान और कारीगर दोनों ही सहकारी समितिके मार्फत व्यवहार करेंगे। यह सम्भावित सम्पर्क जातिवादको कमजोर करेगा। गांवका समुन्नत संगठन जिम्मेदारीके स्थानों पर जातिका खयाल किये बिना योग्य आदमी नियुक्त करके जातिकी अपेक्षा योग्यताका आदर करनेकी वृत्तिको बढ़ावा दे सकता है।

सांस्कृतिक विकास

सांस्कृतिक विकासके लिए भी गांवके स्तर पर समुन्नत संगठनकी आवश्यकता है। संयुक्त परिवार-प्रथा समाप्त-सी हो रही है। उससे

कार्यका बटवारा होता था और स्त्रियोको सास्कृतिक अवकाश मिलता था। ऐसी हालतमें यह आवश्यक हो गया है कि परिवारोको उसी प्रकारकी सुविधाएं देनेके लिए ग्रामस्तरीय सेवाओका आयोजन किया जाय। गावमें एक धुलाई-घर बन सकता है, जहा गावमे बना हुआ नया कपड़ा और सब परिवारोके रोजके कपडे धोये जाये। इससे न केवल स्त्रियोका भार हलका होगा, बल्कि लोगोकी कलात्मक रुचि भी बढेगी। सम्मिलित डेरी फार्मसे भी स्त्रियोका भार हलका होगा। उनका आटा पीसनेका और दाल आदि बनानेका काम गावकी सहकारी समितिके द्वारा होने लगे, तो उनका कठिन परिश्रम और भी कम हो जायगा। पारिवारिक जीवन इससे सुब्ध नही होगा, बल्कि सास्कृतिक जीवनका विकास होगा। यदि इस प्रकार स्त्रियोकी समय-सारिणीमें कामके घटोकी सख्या प्रतिदिन ६ घटे रह जाय, तो वे करीब-करीब २ घटे सामूहिक केन्द्रमें दूसरी बहनोके साथ बिता सकती है, जहा वे कला-कौशल, बाल-कल्याण, सगीत और आहार-विज्ञान आदिका अध्ययन कर सकती है। ऐसी सम्मिलित सुविधाओका सगठन करनेसे महिलाओकी वर्तमान परेशानी कम होगी और उन्हे घरकी अपेक्षा अधिक उच्च स्तर पर कार्य करनेका अवसर मिलेगा। महिलाओके व्यक्तित्वका विकास करनेके लिए और उनका दृष्टिकोण विकसित करनेके लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार ग्रामीण स्त्रियोको ससारके निरतर बढते हुए ज्ञानसे परिचित होनेकी सुविधा दी जाय, तो एक नयी ग्रामीण सभ्यताकी बुनियाद पड सकेगी।

२

उच्चतर संगठन

नये संतुलनके साथ विस्तार

ग्राम-संस्कृतिके अगले चरणमें हमें ग्राम-समाजकी जीवन-रक्षाके लिए नयी कार्य-पद्धतियोंका अवलम्बन करना होगा। केन्द्रीकरणकी प्रवृत्तिके कारण उसका जो विघटन हो रहा है उसे रोकना है। उसके गतिशून्य जीवन, सीमित साधन और सीमित अवसरकी समस्याएँ हल करना है और ग्राम-निवासीके लिए नये अवसर उपलब्ध करना है। उसका जीवन-मान भी ऊंचा करना है। अर्थ-व्यवस्थाको ऊंचा करनेके प्रयत्नमें नये सनुलन कायम करने होंगे। अर्थात् स्वाभाविक जीवन और संगठित जीवन, बेकारीका निवारण और प्रगतिशील अर्थ-योजना, कामके आन्तरिक मूल्य और बाह्य मूल्य, मानवीय गुणोंका विकास और वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी प्रगति और न्यायपूर्ण वितरण — इन सबके बीच संतुलन कायम करना होगा। ग्राम-निवासीको पुराने सामन्तवादी वातावरण और जातिवादकी कठोरतासे मुक्त करना है। साथ ही आवश्यक सामाजिक सुरक्षाओंका आश्वासन भी देना है। इस प्रकार ग्राम-जीवनके ऐसे सन्तुलित विकासके लिए उपयुक्त कार्यक्रम बनाते हुए हमें निम्नलिखित सवालों पर विचार करना होगा :

१. गांधीजीकी सागरवृत्तवाली समाज-रचना।
२. कार्य-पद्धतियोंका क्रमिक सुधार।
३. अर्थनिश्चित ग्राम-अर्थव्यवस्थाका विकास।
४. विशिष्ट सेवाओंका प्रबन्ध।
५. सुविधाओं और सेवाओंका प्रबन्ध।
६. परिवारोंकी अनेक-विध प्रवृत्तियां।
७. सामाजिक सुरक्षाका प्रबन्ध।
८. व्यवसाय-विभाजन।

९. फसलोंका आयोजन।
१०. बाजार।
११. ज्ञानका विस्तार।
१२. सांस्कृतिक अलगावसे उद्धार।
१३. परस्पर आदर-भाव।

समाजवादी कल्याण-राज्यके बदले सहकारी पंचायती राज्य

ये सब मुद्दे ग्राम-जीवनके उच्चतर संगठनकी आवश्यकता सूचित करते हैं। उस समाज-व्यवस्थामें मनुष्यके लाभके लिए जो भी कार्य किये जायेंगे, वे किसी बाहरी संस्था द्वारा नहीं किये जायेंगे। वरन् वह अपने विकासके लिए उन्हें स्वयं सम्पन्न करेगा। अवश्य ही अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए उसे अकेले नहीं लड़ना पड़ेगा। वह अपने साथियोंके संगठित सहयोगके द्वारा अपनी समस्या हल करेगा। ऐसे संगठनमें व्यक्ति न तो निष्क्रिय द्रष्टा रहेगा और न ही एक लाचार यंत्र, वरन् वह अनुभव करेगा कि उस संगठनके संचालनमें उसका सक्रिय योग है। वह संगठन उसके परिवार और गांवसे बड़ा होगा, ताकि उसे उससे संगठित जीवनके लाभ प्राप्त हो सकें। लेकिन वह संगठन इतना बड़ा भी नहीं होगा कि मनुष्यका अपने साथियोंसे सजीव संपर्क न रह सके। वह ऐसा संगठन होगा जिसमें मनुष्य बाहरी शक्तियोंके वशीभूत नहीं होगा, वरन् अपने ही अनुशासनसे नियंत्रित होगा। जहां कहीं किसी व्यक्तिके आत्मानुशासनमें कमी होगी वहां उसकी पूर्ति सदस्योंके पारस्परिक नियंत्रणसे कर दी जायगी। स्पष्ट है कि इस प्रकारका संगठन सहकारी होगा, समाजवादी नहीं। श्री जयप्रकाश नारायणने ठीक ही कहा है कि समाजके पुनर्निर्माणके भारतीय आदर्शकी दृष्टिसे समाजवादी कल्याणकारी राज्यकी अपेक्षा सहकारी पंचायती राज्यका रूप अधिक उपयुक्त है।

स्वाश्रयी और सहकारी क्षेत्र

इस प्रकारका संगठन मनुष्यके विकासके उपाय खोज निकालेगा। इस प्रयत्नमें वह मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक नियंत्रणके

बीचका 'स्वर्ण मार्ग' खोज निकालेगा। वह सामाजिक सुरक्षाकी योजनाओंके रूपमें ऐसी कार्य-प्रणालिया अपनायेगा, जिनमें व्यक्ति समाजमें सम्पूर्ण सुरक्षाका अनुभव करेगा। संगठनमें ऐसे प्रतिबन्ध भी कायम किये जायगे जिनके द्वारा व्यक्तिकी समाज-विरोधी वृत्तियो और कार्यों पर नियत्रण रहेगा। इस उद्देश्यसे वह अर्थ-व्यवस्थाका ऐसा विभाजन करेगा कि व्यक्तिकी आर्थिक प्रवृत्तिया नियमबद्ध रहें। स्वाश्रयी क्षेत्रका उसमें सबसे अधिक स्थान होगा, जिसमें मनुष्य अपने श्रमके फलका स्वय उपभोग करता रहे। जहा बहुत व्यक्तियोंका श्रम इकट्ठा होगा या जिसमें यत्रशक्तिका उपयोग किया जायगा, वहा सहकारी पद्धति दाखिल की जायगी। उसमें व्यापार और व्यवसाय भी सहकारी रूपमें होगा, ताकि उसका सचालन सम्पूर्ण समुदायके हितमें हो। व्यापार और व्यवसायकी ऐसी सहकारी व्यवस्थामें वास्तविक आवश्यकतासे अधिक पदार्थोंका ही विनिमय होगा। कच्चे मालके उत्पादकोंका शोषण नहीं होगा। इसी प्रकार विशिष्ट सेवाओंका नियोजन भी सहकारी क्षेत्रके अन्तर्गत ही किया जायगा, ताकि उनका लाभ समाजके निर्धनसे निर्धन व्यक्तियोंको मिले और उनका शोषण रुके।

सुशृंखलित व्यवस्था

ग्राम-अर्थव्यवस्थाकी रचना और विकासके लिए सगठनके प्रकारका बहुत महत्त्व है। इस सगठनको गावोंकी छिन्न-भिन्न अर्थ-व्यवस्थाको सुशृंखलित करनेका काम करना है। दूसरे शब्दोंमें उसे ग्रामकी अर्थ-व्यवस्थाके आतरिक सघर्षोंको हल करना पडेगा, ताकि भिन्न-भिन्न वर्गोंके हितोंमें सामजस्य स्थापित हो और गावमें शान्ति और सम्पन्नता बढे। उसे गावकी अर्थ-व्यवस्थाके बाहरी सघर्षोंको भी हल करना होगा और इसके लिए गावकी इकाईका ग्राम-समूह या क्षेत्रकी अर्थ-व्यवस्थाके साथ मेल बैठाना होगा। यदि एक वर्गका स्वार्थ दूसरेके विरुद्ध हो, तो यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। वह तभी पूरा होगा जब वे एक बृहत् रचनाके परस्पर पूरक अश हो और सबके हितोंमें सामजस्य हो। उसी दशामें गावके और क्षेत्रके सम्पूर्ण साधनोंका उपयोग हो सकता है और स्थानीय नेतृत्व मिल सकता है। "व्यापक सहकारी

सगठन सहयोगका एक उत्कृष्ट और बहुत शक्तिदायी रूप है; परन्तु यदि हम केवल किसी सीमित कामके लिए जैसे खरीद-बिक्री या कर्जके लिए सहकारी सगठन बनाते हैं, तो उस सीमा तक लाभ भले ही मिल जाय, परन्तु पारस्परिक सहयोगका सच्चा आनन्द नही मिलता। उपभोक्ताओंकी सहकारी समितियोंमें सहयोगका तत्व बहुत थोड़ा है। उनकी अपेक्षा उत्पादकोंकी सहकारी समितियोंमें सर्जकताके लिए ज्यादा अवकाश होता है, परन्तु सहकारिताका सबसे अधिक सतोषप्रद और लाभप्रद रूप तो समग्र सहकारितामें ही प्राप्त होता है। क्रोपाटकिनके शब्दोंमें यह गावके ऐसे क्षेत्रमें ही सभव है, जहा सामुदायिक जीवन उत्पादन और उपभोगके सयुक्त आधार पर बनता है। यहा उत्पादनका तात्पर्य केवल खेती नही है; उसमें उद्योग, दस्तकारिया और खेती सब शामिल है।" *

गावोंमें उत्पादक ही उपभोक्ता हैं

प्राय: यह समझा जाता है कि व्यक्ति अपने सामान्य हितोंके लिए सहयोग कर सकते हैं; और यह कि एक वर्गके रूपमें उत्पादकोंके हित समान होते हैं और इसी तरह उपभोक्ताओंके हित भी समान होते हैं। किसी एक गावमें कच्चे मालसे पक्का माल बनानेके उद्योगमें लगे हुए कारीगरोंको उत्पादक वर्ग माना जाता है और किसानोंको उपभोक्ता वर्ग। इस आधार पर कारीगरोंका पृथक् संगठन बनानेकी सिफारिश की जाती है। परन्तु यह मान्यता ही गलत है। किसान केवल उपभोक्ता नहीं हैं, बल्कि वे कच्चे मालके उत्पादक भी हैं। अर्थात् उत्पादक और उपभोक्ता दोनो हैं। दस्तकारोंं द्वारा कच्चे मालका पक्का माल प्राय वे अपने उपभोगके लिए ही बनवाते हैं। तेली, कुम्हार, बढई, धोबी, दर्जी आदिसे वे ऐसा ही करवाते हैं। यहा उत्पादकोंका हित उपभोक्ताके हितसे पृथक् नही होता। दस्तकार स्वतन्त्र उत्पादक नही है, बल्कि वे उत्पादक उपभोक्ताओंकी अमुक सेवा करते हैं और उस सेवाके बदलेमें उन्हें पुरस्कार मिलता है। उत्पादक उपभोक्ताको

---

* अशोक मेहता: स्टडीज़ इन एशियन सोशलिज़्म, पृ० ७७।

कारीगरोंकी सेवाकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता उन कारीगरोंको वह सेवा देनेकी है। उत्पादक उपभोक्ताओंको यह संतोष रहता है कि अपने कच्चे मालका, अपने ही उपभोगके लिए, अपनी निगरानीमें बना हुआ पक्का और मजबूत माल उन्हें मिलता रहेगा। उन्हें यह भरोसा भी रहता है कि वह टिकाऊ और शुद्ध होगा तथा नियमित रूपसे मिलता रहेगा। दूसरे, उनके कच्चे मालका पक्का माल स्थानीय दस्तकारों द्वारा वहीं बनाया जाय, तो ही वे वैसा पक्का माल बनानेवाले कारखानोंके साथ होडमें उतर सकते हैं, यानी अपनी वस्तुका उतना ही मूल्य रख सकते हैं। जब गांवकी अर्थ-रचनामें विविधता होगी तभी वहां चलनेवाले काम-धन्धोंमें सतुलन आयगा व मनुष्य-शक्तिका विहित उपयोग हो सकेगा, तभी गांवकी अर्थ-व्यवस्था प्रगतिशील बनेगी और ग्रामवासियोंको अभीष्ट सुविधाएं और सेवाएं उपलब्ध हो सकेंगी।

संयुक्त संगठन द्वारा न्याययुक्त व्यवहार

दस्तकारोंका हम पृथक् वर्ग मानें और खेतिहर किसानका पृथक् और ऐसा समझें कि किसानोंके खिलाफ हमें दस्तकारोंके हितोंकी रक्षा करनी है, तो बहुतसी कठिन समस्यायें पैदा हो जाती हैं। किसान अपनेको कारीगरोंके बने हुए मालका केवल उपभोक्ता मानेगा, तो उसकी नजर कीमतोंकी कमी-बेशी पर रहेगी और कारखानोंकी तुलनामें दस्तकार घाटेमें रहेगा। यदि कीमतोंके बारेमें प्रतिस्पर्धाकी दृष्टि रहे तो एक ही पेशेमें एक दस्तकार दूसरे दस्तकारसे प्रतिस्पर्धा करेगा और दाम घटाकर या मिलावट करके कम दामोंमें माल बेचनेकी कोशिश करेगा, जिसमें दोनोंको ही नुकसान रहेगा। उदाहरणके लिए, ऐसी हालतमें किसी गांवके दो तेलियोंमें एक-दूसरेके ग्राहकोंके लिए छीना-झपटी होगी। सच पूछिए तो तेलीके हितकी समानता दूसरे तेलीके साथ उतनी नहीं है जितनी तिलहन पैदा करनेवाले उपभोक्ताके साथ है। यदि बहुसंख्यक किसान-वर्ग अल्पसंख्यक कारीगर-वर्गको उसकी मेहनतके लिए कम मजदूरी देना तय करे, तो खरीदके वक्त वह उसे उसके पक्के मालका कम दाम भी दे सकता है। प्रत्येक दशामें अल्पसंख्यक वर्गके लिए

बहुसख्यक वर्गकी सद्भावना आवश्यक है। अल्पसख्यक वर्गको अपनी सेवाओ और कामका उचित मुआवजा मिलनेके लिए वर्गोके पृथक् सगठनके बजाय सयुक्त सगठन ज्यादा उपयोगी है। इस उदाहरणसे सयुक्त संगठनकी विशेष उपयोगिता सिद्ध होती है। यदि संयुक्त सगठन क्षेत्रीय स्तर पर खडा किया जाय, तो विभिन्न वर्गोके हितोमें मेल साधा जा सकता है।

सघकी स्थापना होने पर भी उसके वर्गोमें स्वार्थोका सघर्ष प्रारभिक स्तर पर ही हल कर लेना चाहिये, ताकि वह सघके स्तर तक न पहुचे। समय पर किया हुआ काम आगेकी कठिनाइयोको बचा लेता है। यदि बहुसख्यक वर्ग स्थानीय कारीगरोकी सेवाओंकी उपेक्षा करने लगे, तो कारीगरोंको कच्चा माल मिलनेकी समस्या कठिन हो जायगी। क्योकि वे साधनहीन है और उनके पास पैसा नही है। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाके भिन्न भिन्न अग सहयोगी न बनें और एक-दूसरेकी उपेक्षा करे, तो सारे गावके लिए पूर्ण रोजगारी मिलना असभव हो जाय। वर्गोके ऐसे पृथक् सगठन खड़े करनेसे एक ऐसे कुचक्रका निर्माण होता है, जिसमें से निकलना कठिन हो जाता है। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थामें पूरा ग्राम-समुदाय सहयोगपूर्वक काम करे तभी उसके भिन्न भिन्न वर्गोके हित भी सध सकते हैं।

ग्रामीण समाजको एक ही केन्द्रबिन्दुसे खीचे गये वृत्तोकी शृखलाकी भाति देखना चाहिये, जहा क्षेत्रीय सगठन ग्राम और परिवार-स्तरके सगठनोके आधार पर बनते है और उनको बल देते है। लघुतम इकाईकी सेवा करनेका विचार तभी प्रभावकारी हो सकता है जब सगठनोका ढाचा नीचेसे बनता है, ऊपरसे लादा नही जाता।

ढांचा

यहा जिस ढाचेकी कल्पना की गई है उसमें ग्रामके सभी परिवार गावकी अर्थ-व्यवस्थाके विकासके लिए ग्राम सहकारी समितिका निर्माण करेंगे। बीस हजारकी आबादीकी सभी सहकारी समितिया अपना एक समूह-सघ (Group union) बनायेगी। तालुकेकी सभी

सहकारी समितिया तालुका विकास सघका निर्माण करेंगी। और ये सब सघ मिलकर जिला विकास सघ बनायेंगे।

समूह-सघ अपने सदस्योके हितमें कार्य करेगा। कुछ विशेष उद्योगोको बढानेके लिए वह सहायक समितियां भी खडी करेगा। सहायक समितियोके सदस्य ग्रामीण सहकारी समितिके सदस्य होनेके कारण अपने ग्रामके प्रति उत्तरदायी रहेंगे। सहायक समितियोकी प्रबन्धकारिणीमें समूह-सघका प्रतिनिधित्व रहेगा। समूह-सघ सहायक समितियोको सामुदायिक हितके लिए सदैव प्रेरित तथा प्रभावित करता रहेगा। समूह-सघ सहायक समितियोको उनके सदस्योकी सयुक्त तथा वैयक्तिक जिम्मेदारी पर वित्तीय सहायता दिया करेगा।

तालुका स्तर पर विकास-सघ (Development union) अपने सदस्योके कार्योकी और उनके हिसाब-किताबकी जाच व देखभाल करेगा तथा उनके हितमें व्यापार करेगा। यदि आवश्यकता पडी तो वह विशेष उद्योगोके लिए ऐसी साझेदारी समितिया (Copartnership Societies) भी खडी करेगा, जिनमें श्रमिकोके साथ साथ कच्चे मालके उत्पादक या तैयार मालके उपभोक्ताके रूपमें दिलचस्पी रखनेवाले व्यक्ति भी सदस्य होगे। ऐसी समितियोमे लाभका वितरण करनेमें काम करनेवालोके हितका विशेष ध्यान रखा जायगा।

तालुका स्तरकी सहकारी समितिया जिलास्तर पर सघबद्ध होंगी। सघ नवीन सहकारी सस्थाओका निर्माण करेगा और अपनी सदस्य समितियोके कार्यकी देखभाल तथा उनके कार्योमें सामजस्य स्थापित करेगा। सहकारी समितियोके सचालनके लिए सघ कार्यकर्ताओके प्रशिक्षणका कार्य करेगा। आवश्यकता होने पर वह जिलास्तर पर साझेदारीकी समितियोका निर्माण करेगा। ग्रामस्तर पर आर्थिक योजनाओंको कार्यान्वित करनेकी जिम्मेदारी तो ग्राम-समितियोकी ही होगी, पर उनका काम आसानीसे चले इसके लिए अनुकूल परिस्थितिया उत्पन्न करनेमें जिला सघ मदद करेगा। इसके सिवा, वह जिलास्तर पर उनकी योजनाओका सकलन भी करेगा।

वित्त-व्यवस्था

जिला सहकारी बैंक तालुका संघको, तालुका सहकारी बैंकको और जिला तथा तालुका स्तर पर साझेदारी समितियोंको रुपया देगा। तालुका संघ और साझेदारी समितियोंको तालुका बैंकके मार्फत रुपया मिलेगा। वही समूह-संघ और उसकी ग्राम-समितियोंको रुपया देगा। समूह-संघ ग्राम-समितियोंके बजट और ऋणकी मांगोंकी जांच करावेगा। जिन गांवोंमें ग्राम-समितियां मनुष्य-शक्ति और दूसरे साधनोंके बजट बनाती हैं वहां तालुका बैंक उनकी बचत इकट्ठी करनेका काम भी करेगा। सहकारी समितियों और बैंकोंकी स्थापनासे गांवोंमें बचतका उपयोग करनेके अवसरके अभावकी कठिनाई दूर हो जायगी।

राज्य सहकारी मंडल

सहकारी आन्दोलनको प्रोत्साहित करनेके लिए और अनुकूल मानसिक वातावरण उत्पन्न करनेके लिए जिला बैंक और संघ तथा साझेदारी समितियां एक राज्य सहकारी मंडलकी स्थापना करेंगी। यह मंडल साधारण नीतियोंका निर्धारण करेगा, व्यापक स्वरूपकी योजनाएं तैयार करेगा तथा जिलेमें उनका प्रचार करेगा। यह स्वस्थ सहकारिताके विकासको प्रोत्साहित करेगा। किंतु इसका कार्य तथा प्रभाव शासनात्मक नहीं, नैतिक होगा। यह विभिन्न सहकारी समितियोंके झगड़ोंका भी फैसला करेगा।

यह सारा तंत्र ग्राम-समाजकी नींव पर खड़ा होगा। ग्राम-समाज उसकी मूल इकाई होगी। उसमें विशेष ज्ञानकी अपेक्षा रखनेवाले कार्योंके लिए विशेषज्ञोंकी व्यवस्था होगी और उसकी योजनायें पूरे क्षेत्रके समग्र विकासका उद्देश्य रखकर बनायी जायेंगी। इसलिए वह सहकारिताको जन आन्दोलनका रूप दे सकेगा और सत्ता तथा जिम्मेदारी उनके सच्चे अधिकारियोंके हाथमें सौंपकर विकासकी प्रक्रियाको तीव्र बनायेगा। बड़ी इकाइयां छोटी इकाइयोंके द्वारा बलवान बनेंगी और बदलेमें उनको बलवान बनावेंगी। गांवकी ग्राम सहकारी समिति गांवके साधनोंको एकत्र करेगा और क्षेत्रके हितमें उनका एक हिस्सा बड़ी इकाइयोंको देगी। क्षेत्रीय

सम्थायें विशिष्ट सेवाओंके द्वारा विज्ञानकी जानकारी और उसका उपयोग ग्राम तक पहुचायेंगी। और यदि वे पिछडे हुए हैं तो क्षेत्रीय विकासकी गतिके साथ साथ चलनेमें उन्हें मदद करेगी।

गावको क्षेत्रके साथ जोडनेवाला ऐसा तत्र नगर और गाव दोनोंकी अच्छी बातोका समन्वय कर सकेगा। अभी गाव और शहरमें जो कृत्रिम अन्तर है वह मिट जायगा। क्षेत्रीय सगठनका एक बुनियादी उद्देश्य परम्परागत ग्रामीण समाज और नवीन नागरिक सभ्यतामें सामजस्य स्थापित करना है। ग्रामीण जीवन मनुष्यको स्थायित्वका अनुभव देता है और समाज तथा प्रकृतिके साथ एकता अथवा तादात्म्य साधनेमें मदद करता है। औद्योगिक इकाइयोके विकेन्द्रीकरणके द्वारा क्षेत्रीय सगठनमें गावका आर्थिक और सास्कृतिक एकाकीपन और पिछडापन दूर होता है और शहरोका दमघोटू वातावरण और बेगानापन मिटता है। क्षेत्रीय सगठनके द्वारा एक ऐसा बडा समुदाय बनता है, जिसके अन्दर प्रत्येक इकाईका समुचित स्थान होता है और जो उसे समुदायकी समृद्धिमें अपना योगदान करनेकी योग्यता प्रदान करता है। "वह विकेन्द्रीकरणका भी माध्यम है।... वह अधिकार और साधनोके केन्द्रीकरणको रोकता है और परिमाण-प्रधान दुनियामें गुण पर आधारित सभ्यताकी रक्षा करता है।"* क्षेत्रवाद गाधीजीको सागरवृत्तवाली कल्पनाका सीधा स्वरूप है।

१. गाधीजीकी सागरवृत्तवाली समाज-रचना

यह नया सगठन वस्तुत: गाधीजीकी सागरवृत्तवाली कल्पना पर आधारित विकेन्द्रित सहकारी अर्थ-व्यवस्थाकी स्थापना करेगा। "ऐसा समाज अनगिनत गावोका बना होगा। उसका फैलाव एकके ऊपर एकके ढगका नही, बल्कि लहरोकी तरह एकके बाद एककी शक्लका होगा। जिन्दगी मीनारकी शकलमें नही होगी, जहा ऊपरकी तग चोटीको नीचेके चौडे पाये पर खडा होना पडता है। वहा तो समुद्रकी लहरोकी तरह जिन्दगी एकके बाद एक घेरेकी शकलमें होगी

* एच० डब्ल्यू० ओडम : इन सर्च ऑफ रीजनल बैलेंस, पृ० ११।

और व्यक्ति उसका मध्यविन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गावके खातिर मिटनेको तैयार रहेगा। गाव अपने इर्दगिर्दके गावोके लिए मिटनेको तैयार रहेगा। इस तरह सारा समाज ऐसे लोगोका वन जायगा, जो उद्धत वनकर कभी किसी पर हमला नही करते, वल्कि हमेशा नम्र रहते है और अपनेमें समुद्रकी उस शानको महसूस करते है जिसके वे अविभाज्य अग है। इसलिए सबसे वाहरका घेरा अपनी ताकतका उपयोग भीतरवालोको कुचलनेमे नही करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पायेगा।... उसमे न तो कोई पहला होगा, न आखिरी।" *

सागरवृत्तकी एक भावना नीचेके श्लोकमें व्यक्त होती है। वह बताता है कि यह कल्पना हमारी परपराके अनुकूल है।

त्यजेदेक कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत्॥

इस रचनामें प्रतिस्पर्धाके स्थान पर विकेद्रित सहकारी अर्थ-व्यवस्था कायम होती है। परिवार और ग्राम क्षेत्रकी इकाइयोमें औद्योगिक क्रियाओ और अन्य कार्योका समुचित वितरण होता है और कार्यक्षेत्रके विभाजन तथा भावोकी समानताके द्वारा विभिन्न इकाइयोके हितोका सामजस्य किया जाता है। चूकि यह क्षेत्रीय सगठन काफी वडा होगा, भीतरसे सुसगठित होगा और आवश्यकतानुसार यत्रशक्तिका भी उपयोग करेगा, इसलिए वह बाहरी प्रतिस्पर्धाका मुकावला कर सकेगा। भीतरी प्रतिस्पर्धा तो सागरवृत्तकी कल्पनाके आधार पर रचे गये इस सगठनमें होगी ही नही। इसलिए कार्य-पद्धतियोमें योजनावद्ध सुधार आसानीसे किये जा सकेंगे और रोजगार तथा अवसरकी समानताके सामाजिक उद्देश्योकी पूर्तिमे भी कोई रुकावट न पडेगी। यह सहकारी अर्थ-व्यवस्था अच्छे आदमी और अच्छी सस्थाओके दुहरे आधार पर कायम होगी।

सागरवृत्तवाली यह रचना गावोकी वर्तमान गतिशून्य अर्थ-व्यवस्थाको प्रगतिशील और उन्नत बनानेका प्रवल साधन है। उससे

* हरिजन, २८-७-'४६

उत्पादन और उपभोग दोनों ही बढ़ते हैं। यह पद्धति एक ओर तो उपभोगके मौजूदा स्तर और उसके अधिकतम आदर्श स्तरका विचार करती है और दूसरी ओर जो मनुष्य-शक्ति और साधन बेकार पड़े हैं उनका, और फिर यह समुचित उत्पादन-कार्यक्रमोंकी योजना करके इन दोनोंका मेल बैठाती है। यह ग्राम-समाजको जिन चीजोंकी अभी जरूरत है उन्हें तो पूरा करती ही है, इसके सिवा वह उनकी मांगोंका विस्तार करके नई आवश्यकताएं भी उत्पन्न करती है। यह युवकोंके लिए विकासके नये अवसर खोलती है और शहरमें रहनेवालों तथा गांवमें रहनेवालोंके बीच समान स्तर कायम करती है। दस्तकारों और उपभोक्ताओंके आपसी व्यवहारको सहकारिताके माध्यमसे सम्पादित करके वह अमुक पेशोंके साथ जुड़े हुए अनगिनत पूर्वग्रहोंको मिटा सकती है। और इस प्रकार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती है, जिसमें मजदूर अपनी रुचिके अनुसार कोई भी धंधा चुन सकते हैं। फलतः गांवकी अर्थ-व्यवस्थामें धंधोंका ढांचा (Occupational pattern) ज्यादा अच्छा बनता है। सबसे बड़ी बात यह है कि छोटे छोटे प्रजातंत्रोंकी रचना नागरवृत्तवाली समाज-रचनामें ही हो सकती है। वहीं केन्द्रीकरणकी आसुरी विकट समस्याका सही इलाज है। यह केन्द्रीकरण और विघटनके बीच संतुलन कायम करती है। उससे छोटे समुदायों और बड़ी आबादी-वाले केन्द्रों — दोनोंको लाभ मिलते हैं। जैसा श्री विन्सेंट बेकरने कहा है, "क्षेत्रीय संगठनके द्वारा ही मनुष्यको पूरी आजादी मिल सकेगी। वस्तुतः क्षेत्रीय संगठन आजादी बनानेकी आवश्यकता है। व्यक्तिगत आजादीके साथ समाज-व्यवस्था उसीके द्वारा कायम हो सकती है।"

२. कार्य-पद्धतियोंका क्रमिक सुधार

उन्नत औजारों और कार्य-पद्धतियोंका प्रचार एक निर्विवाद सत्य मालूम होता है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि बलवानकी ही जीत होती है (Survival of the fittest) के सिद्धांतके पीछे रहनेवाला कारण दर असल वरदान नहीं सिद्ध हुआ है। इस स्थितिको श्री नेहरूने दो अवसरों पर स्पष्ट किया है। इंडियन चेम्बर्स और कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीके

१९५६ के बीसवें वार्षिकोत्सवके अवसर पर बोलते हुए उन्होंने नई दिल्लीमें कहा था कि "उत्पादनके पुराने परम्परागत तरीकोंमें सुधार होना चाहिये, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि मौजूदा जमानेमें पुराने मानससे भी हमारा काम नहीं चल सकता। हमें इस मानसको भी सुधारना होगा।" अगर पुराने औजारोंको बदलनेकी आवश्यकता है तो इससे भी अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि पुराना मानस अपनी परिग्रहकी वृत्ति और सुधरे हुए औजारों तथा कार्य-पद्धतियोंका सारा लाभ खुद हथियानेकी वृत्तिका त्याग कर दे।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी १९५९ की हैदराबादकी बैठकमें श्री नेहरूने उसकी आर्थिक योजनाकी सिफारिश करते हुए कहा था, "मनुष्य उच्च कोटिका प्राणी है। बलवानकी रक्षा और दुर्बलके नाशका प्राकृतिक नियम उसके व्यवहारका नियामक नहीं रहने दिया जा सकता। उद्योग तथा व्यवसायकी स्वतंत्रताका नियंत्रण पूंजीवादी देशोंमें भी होता है, ताकि साधनहीन दुर्बल व्यक्ति सम्पत्तिवान व्यक्तिके पंजोंमें फंस कर उनका शिकार न बन सके। तीक्ष्ण बुद्धिवाले व्यक्तियोंको अपनी बुद्धि तथा संपत्ति-शक्तिका अपने स्वार्थके लिए उपयोग करनेसे हम पूरी तरह नहीं रोक सकते हैं। आखिरमें ताकत ताकत ही है, चाहे दिमागी ताकत हो या शारीरिक। कुछके पास दूसरोंसे अधिक ताकत होती है। लेकिन हम दुर्बल व्यक्तिको समान अवसर देकर सबल बना सकते हैं। यदि कुदरतके नियमों पर सब कुछ छोड़ दिया जाये, तो अधिक शक्तिवान और अधिक होशियार व्यक्ति ऊपर होंगे और दुर्बल व्यक्तियों पर बोझ बनकर अपने स्वार्थके लिए उनका शोषण करेंगे। इस प्रकारकी नीति शक्तिवानको अधिक शक्तिवान, धनीको अधिक धनी, तथा गरीबको अधिक गरीब कर देगी। हमें इस जंगली जानवरोंवाली आदतसे अधिकाधिक छुटकारा पाना है, क्योंकि उसके द्वारा स्वार्थ तथा निजी लाभ और संग्रहकी वृत्तिको ही बढ़ावा मिलता है।"

इससे सिद्ध होता है कि व्यक्तिगत और सहकारी आर्थिक क्षेत्रोंकी स्थापना बिलकुल उचित है। यह व्यवस्था न्यायोचित वितरणके आधार पर उत्पादन-पद्धतियोंके सुधारको सुनिश्चित कर देती है।

अविकसित देशोंकी अर्थ-व्यवस्थाके विस्तारके लिए उत्पादन-पद्धतियोका क्रमिक सुधार एक बुनियादी आवश्यकता है। उनका कुल उत्पादन तभी बढाया जा सकता है जब कि कुशलताके विभिन्न स्तरो पर काम कर रही तमाम कार्य-पद्धतियोका पूरा उपयोग किया जाय। इस शक्तिका आंशिक उपयोग उत्पादनको घटा देता है। बिखरी हुई असख्य इकाइयोकी आजकी सभी पद्धतिया केवल एक रातमें ही नही बदली जा सकती। अवश्य, प्रारंभ तो हमें कुछ इकाइयोकी कार्य-पद्धतिमे सुधार करके ही करना पडेगा। औरोकी अपेक्षा ये ज्यादा लाभ-दायक सिद्ध होगी, तब कुछ दूसरी इकाइया इनका अनुसरण करेंगी। लेकिन फिर भी अधिकाश पिछडो ही रहेंगी। जो थोडी-सी इकाइया नई सुधरी हुई कार्य-पद्धतिया अपनायें, उन्हें यदि नई पद्धतियोको न अपना सकनेवाली इकाइयोको नुकसान पहुचाने दिया जाय यानी इन दूसरी इकाइयोका उत्पादन खतम हो जाये या कम हो जाय, तो कुल उत्पादन अवश्य ही कम हो जायगा। ऐसे भी मनुष्य होगे जो शारीरिक शक्ति अथवा कौशलकी कमीके कारण किसी विशेष स्तरके ही औजारो या कार्य-पद्धतिका उपयोग कर सकते है। यदि उच्चस्तरीय कार्य-पद्धतियो और साधनोका प्रयोग करनेवाली इकाइया उन्हें बेकार बना दें, तो राष्ट्रकी अर्थ-व्यवस्थाको हानि पहुचेगी। उनका योगदान, वह कितना ही स्वल्प हो, समाजको नही मिलेगा। इससे उन मनुष्योमें जडता आयेगी, जिसका असर दूसरे क्षेत्रो पर पडेगा और उन क्षेत्रोका भी उत्पादन गिर जायेगा। इसलिए देशका कुल उत्पादन बढानेकी दृष्टिसे परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये कि राष्ट्रकी समृद्धिमें हरएक अपनी शक्तिका योग दे सके। यह तभी समव है जब उच्चतरके साधन और कार्य-पद्धतिया अपनानेवाली इकाइयोको दूसरी इकाइयोंसे स्पर्धाका मौका न दिया जाये। समान मूल्यकी नीतिके द्वारा साधनो और पद्धतियोमें क्रमिक सुधार और अधिकतम उत्पादन एक साथ ही प्राप्त किये जा सकते हैं। रासायनिक खाद, सीमेन्ट, लोहा और इस्पातके सबधमें इस युक्तिसे काम लिया गया है। इनमें मूल्योका निर्धारण इस प्रकार किया गया है कि कार्यक्षमताके फर्कके बावजूद सभी इकाइया पूर्ण रूपसे चालू रहें।

इसने पूर्तिको बढ़ानेका कार्य किया है। इसी प्रकार इस युक्तिको अधिक-तम उत्पादनके लिए उपभोगकी वस्तुओंके उद्योगके क्षेत्रमें भी लागू किया जा सकता है। इस प्रकारका उत्पादन अर्थकी दृष्टिसे लाभदायक न हो तो भी व्यक्तियोंके अपने विकास और सम्मानकी सुरक्षाके लिए उनको काममें तो लगाये रखता है। इस आन्तरिक मूल्यका किसी बाह्य मूल्यके लिए बलिदान नहीं किया जा सकता। इस संबंधमें हमारी अर्थ-व्यवस्थाका आधार व्यापक हो, यह विचार भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इस प्रकारका उत्पादन क्रयशक्तिका व्यापक विभाजन करता है और उससे देशमें उद्योगीकरणकी गति बढ़ती है। मालकी पूर्तिकी मौजूदा कड़ियोंको तोड़े बिना उन्नत साधनों और पद्धतियोंके विस्तारके लिए एक ऐसा संगठन आवश्यक है, जो सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्थाको दृष्टिमें रख सके और विभागीय शक्तिशाली स्वार्थोंके प्रभावमें न पड़कर एक सयोजित विकास-कार्यक्रमको अपना सके। सागरवृत्तवाली रचना इस प्रयोजनको सिद्ध करती है।

३. अर्धविकसित ग्राम-अर्थव्यवस्थाका विकास

जा रही साधन-शक्तिका उपयोग हो सके। इस दृष्टिसे देखें तो यह संगठन बाहरसे लायी हुई सम्पत्तिको खर्च करनेवाली अच्छी सस्था नही, बल्कि एक सर्जनात्मक सस्था होनी चाहिये। इसे स्थानीय साधनोंकी तलाश करनी होगी और फिर विकासकी सारी शक्तियोंका अभ्यास करना होगा। इन दोनोका मेल साधनेसे साधन-सम्पन्न और साधनहीन दोनोंको हेतुपूर्ण सहकारकी प्रेरणा मिलेगी और सारी साधन-सपत्ति इकट्ठी हो सकनेका वातावरण बन जायगा। साधनोंका यह समुच्चय तीन प्रकारसे हो सकता है:

(१) साधन-सपन्न लोगोको गावके साधनोकी स्थितिका समग्र दर्शन मिल जाय, तो उन्हे अपने साधनोंका उपयोग साधनहीनोके लिए करनेमें ही अपना हित दिखाई देने लगेगा।

(२) ग्राम-बैंककी स्थापना हो, जिसमें नकदी रुपया भी जमा हो और वस्तु तथा श्रम भी। और उन्हें विकासके काममें लगाया जाय।

(३) कृषि, पशु-पालन, डेरी, कच्चे मालसे पक्का माल बनाना और बिक्रीका काम, सब सहकारी पद्धतिसे किया जाय।

पहली पद्धतिमें साधन-सपन्न लोगोके हृदय-परिवर्तनकी आशा है और यह उसकी एक विशेषता है, परन्तु उसमें उतनी स्थिरता नही आवेगी जितनी दूसरी पद्धतिमें। परन्तु सबसे कारगर तो तीसरी पद्धति है। उसमें ग्राम-समाजके समग्र साधनोका सग्रह होकर एककी बचतसे दूसरेकी कमीकी पूर्ति हो जाती है। साधनोका व्यवस्थित उपयोग होता है और अर्थ-व्यवस्था जल्दी विकसित होती है। सहकारिताकी इस पद्धतिका प्रयोग करते हुए भी ग्रामीण बैंककी आवश्यकता इसलिए है कि उसके द्वारा कई गावोके साधनोका एकीकरण किया जा सकता है और उन्हें काममे लगाया जा सकता है। अन्यथा वे बिखरे रहते हैं और बेकार जाते हैं।

"नागपुर काग्रेसके प्रस्ताव पर विचार होते समय कहा गया था कि गावकी प्रारभिक सहकारी समितियोके द्वारा स्थानीय बचतका उपयोग होना चाहिये। यदि ऐसा होना हो तो बैंकोकी शाखायें ऐसे

स्थानों पर होनी चाहिये, जो गाववालोंकी पहुचके लिए सुगम हो। यदि जमा करनेवालोंको यह भरोसा हो कि अल्पकालीन सूचना देकर वे रुपया उठा सकेंगे, तो दूसरे देशोकी तरह हमारे यहा भी सुप्रतिष्ठित ग्राम सहकारी समितिया गावोको सामयिक या स्थायी बचतको आकर्षित कर सकती है। बैंककी शाखाओके द्वारा विक्रय-समितियोंको भी सहायता मिलेगी, जो प्रत्येक मण्डीमें कायम होनी चाहिये। ये समितिया केवल कर्जकी ही भरपाई न करा दे, बल्कि किसानको उसके मालकी उचित कीमत भी दिलायें।" *

हर गावके विकास-कार्यक्रमका विश्लेषण करके स्थानीय बेकार पड़े हुए अथवा अतिरिक्त साधनोके उपयोगकी सभावना मालूम कर लेना चाहिये। परिशिष्ट — ४ मे ऐसा विश्लेषण दिखाया गया है।

विकास-कार्यक्रमकी दृष्टिसे गावोमें बाहरसे लोहा, खेतीके औजार, सीमेन्ट, रासायनिक खाद, कोयला और रगका आयात करनेकी जरूरत होती है। सपूर्ण विकास-कार्यक्रमका यह इतना छोटा हिस्सा होगा कि उसके लिए जरूरी पैसा आसानीसे इकट्ठा हो सकेगा। जहा असामान्य परिस्थिति हो, जैसे कि भूमिका क्षरण बड़े पैमाने पर होता हो और बध बाधनेकी जरूरत हो, पानी भरकर रह जाता हो या जहाकी जमीनमें जमीनके भीतर रहनेवाले पानीका अभाव हो, वहा इनसे सबधित विकास-कार्यक्रमोके लिए गावको बाहरसे सहायता लेनी पड़ेगी। लेकिन साधारणतया ग्रामीण समाज अपने साधनोंके द्वारा ही विकास-कार्यको पूरा कर सकता है।

गावोंकी परम्परागत अर्थ-व्यवस्थामें मानव-शक्तिका समुच्चय करनेकी पद्धति आज भी देखी जा सकती है। गावके सारे दस्तकार बढ़ई-लुहार-सुनार-मोची-चमार-कुम्हार-तेली—दर्जी—नाई-भगी-धोबी—चौकीदार सामूहिक रूपमें गावके किसान परिवारोंकी सेवा करते हैं और फसलके समय प्राय अनाजके रूपमें पुरस्कार पाते हैं। उपरोक्त १२ प्रकारके

* श्री वैकुण्ठभाई ल० मेहताके 'टुवर्ड्स कोऑपरेशन' नामक लेखसे।

कारोंको इस प्रकार पुरस्कृत करनेकी पद्धतिको महाराष्ट्रमें 'बार बलूत' प्रथा कहते हैं। इसमें मजदूरी तुरत नही, किन्तु फसलके समय दी जाती है। अतएव किसानोंको पूजीकी आवश्यकता नही पडती। ठहर कर पुरस्कार देनेके इस सिद्धान्त पर गावके बेकार साधनोंके उपयोगके द्वारा अर्थ-व्यवस्थाको विकसित करनेका तरीका निकल सकता है। गाव और क्षेत्रीय सगठनके नये ढांचेका इस पद्धति पर निर्माण करना चाहिये। परिवर्तित परिस्थितियों और नये सामाजिक उद्देश्योंके अनुकूल कुछ फेरफार उसमें किये जा सकते हैं। पुरस्कार तुरत न देकर नियत समय पर देनेके इस सिद्धातका विकास-कार्यमें जितना उपयोग किया जा सके करना चाहिये। इस सिद्धान्तको व्यापक बनानेमें ग्राम-बैंकके साधनोंका बहुत बडा उपयोग हो सकता है।

४. विशिष्ट सेवाओंका प्रबंध

गावोंमें साधन-समुच्चयका वातावरण कैसे पैदा किया जाय? उसके लिए प्रेरणा क्या हो? ऐसे आदोलनोंमें हमेशाकी तरह प्रायः अपना उन्नत स्वार्थ समझनेवाले अल्पसंख्यक कर्मनिष्ठ लोग ही पहल करते हैं। गावके शिक्षित नवयुवकोंको इस प्रक्रियाका आरभ करना होगा। उनको अपने व्यक्तित्वके विकासकी विशेष रुचि होती है। और अपनी शक्तियोंका विकास करनेके लिए वे बडे अवसर चाहते हैं। इसकी तलाशमें ही वे शहरोमें जाते हैं, लेकिन वहा उनके खप सकनेकी एक सीमा है। इसलिए गावोंके अधिकाश शिक्षित नवयुवक अवसरोंके अभावमें गावमें पड़े-पड़े सड़ते हैं। उनके जीवनमें वैराग्य आ जाता है। शिक्षित लोगोंको रोजगारसे लगाना एक शरणार्थियोंकी-सी समस्या बन गई है, क्योंकि उन्हें केवल शहरों और कस्बोंमें ही काम देनेकी कोशिश की जाती है। उससे समस्याका आशिक समाधान भी नही होता। समस्याका वास्तविक हल तो यही है कि विकास-कार्योंके द्वारा उन्हें गावोंमें ही काम दिया जाय। शिक्षित युवकोंको आत्म-निर्भर बनना होगा। गावोंकी अविकसित अर्थ-व्यवस्थाको विकसित करनेमें वे अपने लिए नये धधे खुद बना सकते हैं। आत्म-निर्भर होनेके इस

प्रयत्नसे वे समाजके निर्माणके निपुण इंजीनियर बन जायेंगे। उन्हें विशेषज्ञोंकी सहायतासे और ग्रामवासियोंका सक्रिय सहयोग और सहकार लेकर गावोंकी अर्थ-व्यवस्थाके प्रत्येक विभागके विकासका अध्ययन करना होगा।

इस प्रकार ग्राम-जीवनके सुधरनेकी सम्भावनायें प्रगट होंगी और निष्क्रियताका कुचक्र टूटेगा। इसमें नयी समस्यायें भी उत्पन्न होंगी। परन्तु उन पर विजय पानेका एकमात्र मार्ग यह है कि ग्राम-समाज अपने साधनोंका समुच्चय करें। यह स्थिति भजबूरन साधन-संग्रहका वातावरण पैदा कर देगी। यह सब धीरे धीरे होगा। इजराइलके शिक्षित नवयुवकोंकी भांति, जिन्होंने अपने घोर परिश्रमके द्वारा फिलिस्तानके रेगिस्तानको सुरम्य-स्थलीमें परिणत कर दिया है, यदि हमारे नवयुवक भी काममें जुट जाय और उत्पादन व कामकी पद्धतिमें सुधार करते जावें, तो वे आज जिन्हें बेगार माना जाता है ऐसे कामोंको भी शिक्षाप्रद और प्रतिष्ठाप्रद बना देंगे। उनका यह कार्य उनके लिए और गावके लिए वरदानरूप सिद्ध होगा। ग्रामवासियों पर उसकी अच्छी प्रतिक्रिया होगी। क्योंकि आखिर गावका युवक उनके ही घर-परिवारका है और यदि वह गावमें ही जम जाता है तो उन्हें प्रसन्नता ही होगी। अगर एक क्षेत्रके सभी शिक्षित युवक मिलकर उस क्षेत्रके विकासकी योजना बनावे, तो वह एक प्रकारका क्षेत्रीय आयोजन ही होगा।

५. सुविधाओं और सेवाओंका प्रबंध

ग्रामीणोंको ऐसी योजनामें विश्वास और आकर्षण होना स्वाभाविक है, जिसके द्वारा उनके जीवनका मौजूदा नीचा स्तर ऊचा उठे। जीवन-स्तरके नीचा होनेका एक मुख्य कारण गावमें सुविधाओं और सेवाओंका अभाव है। उदाहरणके लिए, स्वास्थ्यके सवालको लीजिये। अच्छे योग्य चिकित्सक और डाक्टर गावमें रहना ही नहीं चाहते। यह सुरक्षा केवल शहरोंमें मिलती है। ग्राम-निवासी इलाजके लिए शहरमें तब जाते हैं जब बीमारकी हालत खराब हो जाती है। बीमारी

समय पर चिकित्साके अभावमें प्रायः घातक बन जाती है। इलाजके लिए शहर जानेमें खर्च और परेशानी भी बहुत उठानी पड़ती है। कभी-कभी रोगके सही निदानके लिए कई बार जाना पड़ता है। यदि कई गावोंके ग्रामीण परिवार मिलकर स्वास्थ्य-योजनाका प्रबन्ध करें, तो स्वल्प व्ययमें ही उन्हें घर बैठे इलाजकी सुविधा प्राप्त हो सकती है। कुछ सघन क्षेत्रोंमें प्रयोग और अनुभवसे यह सिद्ध हुआ है। साधन-समुच्चयसे होनेवाले लाभोंके ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पढ़े-लिखे सेवकोंमें तो गावोंमें आज केवल पटवारीको माना जा सकता है। यदि वे अपनी अर्थ-व्यवस्थाका विकास करना चाहते हैं, तो ऐसी सेवाओंकी संख्या और गुणवत्ता दोनोंको ऊंचा उठाना होगा। गावोंके भौतिक साधनोंका, बेकार मनुष्य-शक्तिका और उपभोगके उपयुक्त स्तरमें रही हुई कमियों आदिका सही सर्वेक्षण करनेके लिए कमसे कम एक प्रशिक्षित व्यक्ति गावको चाहिये। यदि भूमि-संरक्षण, सिंचाईकी व्यवस्था, उत्तम बीजकी उपज, पशु-पालन, कच्चे मालका पक्का माल बनानेवाले उद्योग, यातायात और बिक्रीकी व्यवस्था आदिके विकासके लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करना हो, तो गावमें कई प्रशिक्षित व्यक्तियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। यदि ग्राम-निवासी अपने साधन-समुच्चयके द्वारा इस प्रकारकी सेवाओंकी व्यवस्था करें, तो इससे उन्हें लाभ ही होगा। उनका बोझ नहीं बढ़ेगा, बल्कि सम्पत्ति और सुविधायें बढ़ेंगी।

६. परिवारोंकी अनेकविध प्रवृत्तियां

गावके अलग अलग परिवारोंके लिए यह बहुत जरूरी हो गया है कि वे उच्चतर संगठनके लिए साधन-समुच्चय करें। उन पर इतने विविध कार्योंका भार होता है कि वे उनमें से किसीको भी अच्छी तरह पूरा नहीं कर सकते। उन्हें अनेक कामोंकी जानकारी हासिल करनी पड़ती है, जिससे वे किसी एकमें पूरी तरह दक्ष नहीं हो पाते। परि-स्थितियां तो बदलती रही हैं, परन्तु गावोंके संगठनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतएव वे संकट-कालकी स्थितिमें गुजर रहे हैं।

एक समय था जब कि ग्राम-जीवन स्वयपूर्ण था; तब वहा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सुव्यवस्था थी। जाति-बिरादरीके अन्दर बड़े-बड़े संयुक्त परिवार थे। उनमें कामका समुचित बटवारा रहता था और बेरोजगारीकी समस्या नही थी। अंग्रेजोंके जमानेमें पश्चिमी सस्कृतिके और केन्द्रीकरणके प्रभावसे अब गावोंमें केवल छोटे-छोटे इकहरे परिवार रह गये हैं। यदि उनको कुछ आजादी है तो ऐसी कठिनाइया और खतरे भी हैं, जिन्हें टालनेके लिए उन्हें कुछ नयी व्यवस्था करनी पड़ेगी। स्वयपूर्ण अर्थ-व्यवस्थाके रहते हुए गावमे जानी-पहचानी प्रणालियोंसे चलनेवाले पारस्परिक आदान-प्रदान पर आधारित स्वावलबन था। जबसे प्रतिस्पर्धा-मूलक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका द्वार खुल गया है, तबसे गावके किसानकी दशा समुद्रकी जलराशिमे डूबते और उतराते उस मनुष्यके जैसी हो गयी है, जिसे कही किनारा नजर नही आता। वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी कीमतों और भावोंके उतार-चढावके गोरख-धंधेको नही समझता और उन शक्तियोंसे, जो उसका शोषण कर रही हैं, अकेले ही जूझ रहा है। अंग्रेजोंके जमानेमें ग्रामराज्यकी व्यवस्था मिट जानेके कारण उसकी राजनीतिक चेतना भी जाती रही है।

ग्रामीण जीवनका सफल सगठन करनेके लिए कई प्रकारके विज्ञानोंका प्रयोग करना पड़ेगा। कृषि-विज्ञानकी ही अनेक शाखायें हैं। किसानको सफलता प्राप्त करना हो तो उसे भूमि-रसायनशास्त्र, वनस्पति-विज्ञान, पशु-पालन, खेतीका हिसाब और बाजारमे भावोंके उतार-चढाव आदिको समझना आवश्यक है। यदि उसे मकान बनाना है तो व्यवसाय और इजीनियरीका ज्ञान होना चाहिये। गावके उद्योगके लिए तकनीकी जानकारी होनी चाहिये। उत्तम डॉक्टरी सेवा प्राप्त करनी हो तो उसके लिए भी मार्गदर्शन चाहिये। इसी प्रकार गावके बच्चोंको ऊपरकी पढाईमें उपयुक्त विषय चुननेके लिए योग्य मार्गदर्शन मिलना चाहिये। नई-नई जानकारीके लिए बाहरी दुनियासे सम्पर्ककी आवश्यकता है और वह समुचित सहायता और मार्गदर्शनके बिना स्थापित नही हो सकता। ये ग्राम-जीवनके कुछ पहलू हैं, जिनमे से प्रत्येकमे विशिष्ट

मार्गदर्शनकी आवश्यकता है। एक परिवार किसी एक बातमें विशेषता प्राप्त कर सकता है, सबमें नहीं। लेकिन आज जरूरी सहायता और मार्गदर्शनके अभावमें प्रत्येक परिवारको जीवनकी तमाम प्रवृत्तियां खुद संभालनी पड़ती है। जाहिर है कि इसमें उसकी शक्तिका अपव्यय होता है। इसलिए इन सब बातोंकी सामुदायिक व्यवस्था होनी चाहिये। यह काम उच्चतर संघटन ही कर सकता है, क्योंकि उसमें विशेषज्ञोंकी सेवायें प्राप्त करनेकी शक्ति होती है। इस तरह परिवारका परिश्रम कम किया जा सकता है और काम और आरामके लिए समुचित समयकी व्यवस्था हो सकती है।

७. सामाजिक सुरक्षाका प्रबंध

आज ग्राम-जीवनमें कोई सुरक्षा नहीं है। इसके कई कारण है: प्रकृतिकी अनिश्चितता यानी अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि, केन्द्रित और प्रतिस्पर्धा-मूलक अर्थ-व्यवस्था, बेकारी और लाभप्रद कामोंमें लगनेके अवसरका अभाव, आत्मरक्षा, शिक्षा और चिकित्साका समुचित प्रबंध न होना और विवाह आदि अवसरों पर अनाप-शनाप सामाजिक खर्च करनेका अनिवार्य रिवाज। यदि सिंचाईका समुचित प्रबंध हो जाय और संक्रामक रोगोंसे पशुओंकी मृत्यु और कुदरती विपत्तियोंसे फसलकी हानिका बीमा हो जाय, तो गांवोंमें बहुत कुछ सुरक्षाकी स्थिति पैदा हो सकती है। आर्थिक सुरक्षाके इन आयोजनोंके साथ वे आयोजन भी होने चाहिये, जिनसे सबको सामाजिक सुरक्षा मिल सके। यह तब हो सकता है जब ग्राम-पंचायतें और सहकारी समितियां इस दिशामें प्रयत्नशील हों। प्रारंभमें उन्हें निम्नलिखित चतुर्मुखी कार्यक्रम पकड़ना होगा:

१. शिक्षा और बाल-कल्याण;
२. स्वास्थ्य और सफाई;
३. रोजगारीकी निश्चित व्यवस्था;
४. सामाजिक खर्च।

जब उनके पास पर्याप्त पूंजी हो जाये तो वे उपरोक्त बीमा योजना भी आरंभ कर सकते हैं। समाजमें समानता और व्यक्तियोंमें

आत्म-विश्वास लानेके लिए उपरोक्त कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण है। वह व्यक्तियोंके प्रति समाजकी जिम्मेदारीके रूपमें समाजवादके एक विधायक पहलूको कार्यान्वित करता है। दरिद्रताके निवारणको वह समाजकी संयुक्त जिम्मेदारी बना देता है। सामाजिक सुरक्षाके इस कार्यक्रमसे ग्राम-समाजका उत्थान होगा और उसका सच्चा बल बढ़ेगा। अब हम उनमें से एक-एक पर विचार करेंगे।

शिक्षा और बाल-कल्याण

निर्धन बालकोंको शिक्षाका अवसर देनेके लिए पुस्तकों और फीसके रूपमें उनको सहायता दी जा सकती है। छोटे बच्चोंके लिए बालवाड़ियां शुरू की जायें और खेल-कूद तथा मनोरंजनके लिए बाल-क्रीडा केन्द्र और पार्क बनवाये जाय।

स्वास्थ्य और सफाई

सार्वजनिक स्वास्थ्यरक्षाके लिए ग्रामीण क्षेत्रोंमें सहकारी स्वास्थ्य-योजना बनानी होगी। नकदी या गल्लेके रूपमें स्वल्प फीस देकर परिवार उसके सदस्य बन सकेंगे। उनकी चिकित्सा और स्वास्थ्य-संबंधी देखरेख मुफ्त की जायगी। बीमारी और रोगोंकी रोक-थामके लिए गांवको स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद रखना बहुत आवश्यक है। इसके लिए गांवकी ओरसे सफाई और कूड़ा-करकटको हटानेका प्रबंध होना चाहिये। गड्ढे और नीची जगहें, जहां पानी रुककर सड़ता है, श्रम-दानके द्वारा भरे जा सकते हैं। भंगियोंको अच्छी साधन-सुविधायें देकर और खाद बनानेकी जिम्मेदारी सौंपकर उनके कामकी प्रतिष्ठा बढ़ाई जा सकती है।

रोजगारीकी निश्चित व्यवस्था

ग्राम सहकारी समितिको गांवकी आर्थिक प्रवृत्तियोंकी ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि गांवमें कोई बेकार न रहे। जो भी बेकार हो और काममें लगना चाहे उसे स्थानीय परिश्रमालयमें काम और उपयुक्त पारिश्रमिक देना चाहिये, चाहे उसमें कुछ हानि भी क्यों न हो।

सामाजिक खर्च

रीति-रिवाजो और सामाजिक प्रसगो पर होनेवाला व्यय सभी ग्रामीण परिवारोके वजटका आवश्यक अग है। विवाह और मृत्युमे जितना अपव्यय होता है उसके लायक बचत बहुत कम परिवारोके पास होती है। इसलिए उन्हें कर्ज लेना पडता है। ग्राम-समाजको भिन्न भिन्न रस्मोमें खर्चकी मर्यादा बाघ देनी चाहिये और ग्राम-पचायत उसे उस मर्यादाके अन्दर रखे, साथ ही, गावके लोग उस खर्चमें कुछ हिस्सा बटायें। इस प्रकार परिवार अपव्ययके कुपरिणामोसे बच जायेंगे। सामाजिक सुरक्षाके इस कार्यक्रमका आधार इस बात पर होगा कि गावके आतरिक साधनोको किस हद तक गतिशील बनाया गया है। इसके लिए एक ग्रामनिधिका निर्माण करना होगा, जिसमे प्रत्येक परिवार अपनी आमदनीके अनुसार चदा देगा। जिनकी आय अधिक है वे अधिक देगे। गावमें कुछ सामूहिक भूमि भी इस कामके लिए अलग रखी जा सकती है।

इस कार्यक्रमके दो परिणाम होगे। सबको रोजगारी मिलेगी और असमानता दूर होगी। इसके सिवा, उसे कार्यान्वित करनेके सिल-सिलेमे सामाजिक जिम्मेदारीकी भावना बढेगी, जिसमे ग्रामका सगठन सुदृढ होगा।

८. व्यवसाय-विभाजन

युगोंसे भारतवर्षकी सस्कृति कृषि-सस्कृति ही रही है और स्व-शासित गाव उसकी बुनियादी इकाई। देशका राजनीतिक और आर्थिक ढाचा इन गावोंकी नीव पर खडा किया गया था और इनके लिए उन्हें समुचित बडी इकाइयामे सगठित किया गया था। लेकिन पिछली कुछ सदियोंमे, खासकर अग्रेजोके शासन-कालमे, ग्राम-जीवन और उसकी सयुक्त परिवारकी प्रथा टटती रही। और आज तो गावोंकी स्थिति औद्योगिक शहरोंको कच्चा माल मुहैया करनेवाले उत्पादक केन्द्रोंकी हो गयी है। इन गावोंकी समाज-रचना, जो वहा आर्थिक सतुलन कायम रखती थी, जातिप्रथा पर आधारित थी। यह जातिप्रथा बृहत्तर समाजके

हितमें समाजके भिन्न भिन्न वर्गोको भिन्न भिन्न और निश्चित काम सौंपती थी। यह प्रथा, जिसे महाराष्ट्रमें बालुतेदारी कहा जाता है, स्थिर अर्थतन्त्रके लिए आवश्यक उद्योग-धधोका अनुकूल ढाचा पेश करती थी। किसानो, कारीगरो और ग्राम-समाजकी अन्य सेवायें करनेवाले दूसरे लोगोमें आर्थिक परस्परावलम्बन पर आधारित सुमेल था। गावोका वह पुराना अर्थतंत्र टूटने और आबादीके लगातार बढ़ते रहनेसे जमीन पर इतना ज्यादा बोझ हो गया है कि अपनी जीविका जमीनसे कमानेवाले अधिकाश लोगोके लिए पूरी रोजगारी मिलना असभव हो गया है। और विवेकहीन उद्योगीकरणके कारण कारीगर-वर्गका तो लगभग नाश ही हो गया है।

स्वस्थ ग्राम-जीवनके विकासके लिए गावोमें उद्योग-धधोका सतुलन फिर कायम करना होगा और यह सतुलन ऐसा होगा जो आधुनिक शोधोका पूरा उपयोग करेगा और जो सेवाये और सुविधाये शहरोमें उपलब्ध हैं उन्हें गावोमें भी दाखिल करेगा। यदि गावोके अर्थतन्त्रको गतिशील बनाना हो तो न केवल खेतीका उत्पादन बढ़ाना होगा, बल्कि वहा उन सारी सेवाओकी व्यवस्था भी करनी पड़ेगी जिनकी उन्हें जरूरत है।

उद्योग-धधोकी सुनियोजित रचनाके आर्थिक और सामाजिक दोनो हेतु हैं। उद्योग-धधोकी बुद्धिपूर्वक सगठित व्यवस्थामें धधोका विभाजन इस तरह किया जाता है, जिससे गावोकी स्थानिक साधन-सम्पत्तिका ज्यादासे ज्यादा उपयोग हो और सब लोगोको समुचित जीवन-स्तर उपलब्ध हो सके। गावोके लिए जिन विभिन्न व्यवसायोका आयोजन किया गया हो उन्हें गावोके किसानो, कारीगरो और अन्य व्यक्तियोंको पूरी और सर्वांग-सम्पूर्ण रोजगारी दे सकना चाहिये। शिक्षित युवकोंको खेतीकी उपजका रूपान्तर करके नया माल तैयार करनेवाले उद्योग तथा विशिष्ट सेवाकार्य सौंपे जाने चाहिये। यह आयोजन बेकारी और अर्ध-बेकारी दूर करनेका अस्थायी और कामचलाऊ राहत-कार्य नहीं बल्कि सहकारी और विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाका निर्माण करनेकी दृष्टिसे किया गया दीर्घकालीन आयोजन होगा। धधोकी यह रचना ऐसी होनी

चाहिये जिससे हरएक धंधेमें स्वस्थ परम्पराओंका निर्माण हो और कार्यकर्ताओंकी कार्य-क्षमता तथा उनकी गौरवकी भावनामें वृद्धि हो। उसमें विभिन्न धंधोंके बीच आयकी समानता भी आनी चाहिये।

इस संतुलित उद्योग-रचनामें मनुष्य-शक्तिका उपयोग बुद्धिपूर्वक किया जाना चाहिये। खेतीकी जमीनकी तुलनामें आज खेतीके काममें लगे हुए लोगोंकी संख्या ज्यादा है; उसे कम किया जाना चाहिये। गांवकी खेतीके लिए जितने लोगोंकी जरूरत है उतने ही लोगोंको उसमें रखा जाय, तो सहकारी खेती और सघन खेतीके द्वारा उन्हें पूरी रोजगारी दी जा सकती है। इसी तरह सहकारी व्यापारके द्वारा व्यापारमें लगे हुए अतिरिक्त आदमियोंको कम किया जा सकता है। सहकारिताकी पद्धतिके एक पश्चिमी विशेषज्ञका कहना है कि हमारे देशमें दलालों और घर-नौकरोंकी संख्या बहुत ज्यादा है। घरमें और खासकर रसोई-काममें वैज्ञानिक साधन दाखिल करके घर-नौकरोंकी संख्या काफी कम की जा सकती है।

ऐसी रचनामें पूरी रोजगारी मिलनेके सिवा कामका समय भी कम होता है जिससे सांस्कृतिक विकासके लिए अवकाश प्राप्त होता है। रसोईमें वैज्ञानिक साधन दाखिल करनेसे स्त्रियोंको आज जिन असुविधापूर्ण परिस्थितियोंमें काम करना पड़ता है उनमें सुधार होगा और उनका परिश्रम भी कम हो जायगा। तब स्त्रियां अपने गृहकार्योंमें और बच्चोंके लालन-पालनमें गौरवका अनुभव करेंगी और समाजमें रचनात्मक कार्य करनेमें समय दे सकेंगी। तब वे पुरुषोंके काममें मदद दे सकेंगी और पंचायतों, सहकारी समितियों तथा संस्थाओंमें अपना योग्य स्थान प्राप्त कर सकेंगी।

ग्राम और क्षेत्रीय आयोजनके द्वारा जिन्हें अपनी छिपी हुई शक्तियोंका भान हो गया है ऐसे ग्रामजन गांवके अर्थतंत्रमें क्रान्तिकारी सुधार करेंगे और इस शक्तिशील अर्थतंत्रमें अन्तमें उद्योग-धंधोंकी संतुलित रचनाका निर्माण होगा। ऐसी रचना तभी हो सकती है जब कि साधनोंका बुद्धिपूर्वक पूरा उपयोग किया जाय, और उनका ऐसा उपयोग तो सारी इकाई मानकर की गई पूरी गुंथी सहकार-पूर्ण रचनामें ही सम्भव

है। खेती, कच्चे मालका पक्के मालमें रूपान्तर करनेवाले उद्योग और सेवाओंमें आवश्यकताके अनुसार मनुष्य-शक्तिके विवेकपूर्ण उपयोगका मार्ग ग्राम-आयोजन और क्षेत्रीय आयोजनसे ही खुलेगा।

९. फसलोंका आयोजन

कौनसी फसलें ली जायं और कितनी ली जायं, इस बातका निर्णय आज तो बाजार करता है; यानी बाजारमें जिन फसलोंका दाम ज्यादा मिलता है वे फसलें ली जाती हैं। परिणाम यह होता है कि नकद पैसा ज्यादा दिलानेवाली फसलोंको पसंदगी मिलती है। जमीनकी किस्म और पानीके प्रमाणके अनुसार फसलें लेना चाहिये, किन्तु इस बात पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। गांव तथा क्षेत्रके लोगों और पशुओंके लिए पौष्टिक खुराककी जरूरतका तो विचार ही नहीं किया जाता। जहां जमीन अच्छी हो और सिंचाईकी निश्चित सुविधा हो, वहां औद्योगिक फसलें ही उगायी जाती हैं और उन्हें बेचकर अनाज खरीदा जाता है। ऐसे विवेकहीन विनिमयसे स्थानिक साधनोंका दुरुपयोग तो होता ही है, उसके सिवा वाहन-व्यवहार पर भी नाहक खर्च होता है।

१०. बाजार

जबसे गांवोंकी अर्थ-व्यवस्थाका मुंह शहरोंकी ओर मुड़ा है तबसे किसान मानो शहरी व्यापारियोंकी दया पर निर्भर हो गया है। उसमें कटनीके बाद अपने खेतके उत्पादनका संग्रह कर रखनेकी शक्ति नहीं होती, इसलिए उसे अपना माल शहरके व्यापारीको अथवा गांवमें रहनेवाले उसके दलालको — जिनसे प्रायः अपनी मुश्किलके समयमें वह कर्ज लेता है — कम भाव पर बेच देना पड़ता है। उसमें अपने मालकी कीमत खुद निश्चित करनेकी शक्ति नहीं रह गयी है। उसके मालका भाव औद्योगिक शहरोंकी मांग और सट्टा-बाजारकी गति-विधिसे निश्चित होता है। व्यापारीको उत्पादनकी वृद्धिमें कोई रस नहीं होता, क्योंकि उससे शहरमें भावोंके घटने और फलतः उसका मुनाफा घटनेकी संभावना रहती है। इस अन्यायको रोकनेका यही एक उपाय है कि बेचने और खरीदनेके कामके लिए सब किसान मिलकर अपना सहकारी संघ बनायें। ग्राम और क्षेत्रका संगठन सहकारी पद्धतिसे किया जाय, तो उनकी शक्ति और साधनोंमें वृद्धि होगी और उससे गांवोंमें अपने मालको समुचित भावों पर बेचनेकी ताकत आयेगी।

यह बात जिस तरह खेतीके उत्पादनके लिए सच है उसी तरह ग्रामोद्योगोंके उत्पादनके लिए भी सच है। गांवोंकी मौजूदा अर्थ-रचनामें विभिन्न वर्ग अपने-अपने हितोंकी सिद्धिके लिए कोशिश करते हैं और सम्पूर्ण समाजके हितको नुकसान पहुंचता है। ऐसी हालतमें कारीगर-वर्गके हितोंमें आपसमें और उनके तथा किसानोंके हितोंमें संघर्ष होता रहता है। इसके सिवा बाहरके शहरोंके कारखानोंका माल भी आता है और उनकी प्रतिस्पर्धा इन संघर्षोंमें और भी बढ़ जाती है। इस संघर्षमें किसान और कारीगर दोनों औद्योगिक अर्थ-रचनाके शिकार होते हैं। जब तक ये दोनों वर्ग यह नहीं समझते कि उन दोनोंका हित स्थानिक मालका ही उपयोग करनेमें और बेचने तथा खरीदनेका काम सहकारी पद्धतिसे करनेमें है तब तक इस प्रश्नका हल नहीं पाया जा सकता।

बेचना-खरीदना मात्र वस्तुओंके विनिमयका जड़ साधन नहीं होना चाहिये; उसे सामाजिक परिवर्तनका शक्तिशाली साधन भी होना चाहिये। अभी तो उसका उपयोग व्यक्ति अपनी अर्थ-संचयकी वृत्तिकी प्रेरणासे करते हैं; इसके बजाय, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, यह काम सहकारी तंत्र द्वारा होना चाहिये, ताकि वह शोषणके बजाय सेवाका साधन बने। ऐसा होगा तो विनिमय विवेक-युक्त होगा और असमानताको बढानेके बजाय समानताका सहायक होगा। बेचना-खरीदना अर्थ-समृद्धिके विकासका महत्त्वपूर्ण साधन हो सकता है, और होना चाहिये। समुचित जीवन-स्तरकी दृष्टिसे आजकी और भविष्यकी आवश्यकताओंका व्यवस्थित अभ्यास होना चाहियें और उत्पादन तथा उपभोग दोनोंमें एकसाथ वृद्धि हो ऐसा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। शोषणके साधनके रूपमें आज वह खरीद-शक्तिको केन्द्रित करके उपभोगको कम करता है। सेवाके साधनके रूपमें वह खरीद-शक्तिका विस्तार करके उत्पादन और उपभोग दोनोंको बढायेगा। यदि उसका उपयोग सेवाके साधनके रूपमें किया जाय, तो वह क्षेत्रीय आयोजनका एक सक्रिय सहायक सिद्ध होगा। ग्राम-समाजकी सभी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए वह सब प्रकारकी सपत्ति और उत्पादक शक्तिको गतिशील बना सकता है और इस तरह समूचे क्षेत्रकी माग और पूर्तिमें सतुलन स्थापित कर सकता है। यह परिणाम लानेके लिए मौजूदा आवश्यकतासे अधिक दलालोंकी जगह सारा व्यापार सहकारी तत्रके द्वारा चलानेकी प्रथा डालनी चाहिये।

११. ज्ञानका विस्तार

फीलिंडग हॉल कहता है कि जिन लोगोंमें दर्शनकी शक्ति (vision) नहीं होती उनका नाश हो जाता है। गावोंके लोगोंको यह दर्शनकी शक्ति देनेके लिए ही गाधीजी चाहते थे कि "वे अपनेमें उस समुद्रकी भव्यताको महसूस करें जिसके कि वे अभिन्न अग हैं।" इस समाजरूपी समुद्रकी भव्यता अवसरोंकी विविधता, परिचय और सम्पर्कके विस्तार और उन जटिल परिस्थितियोंमें है, जो मनुष्योंकी शक्तियोंको चालना देकर

उनका विकास करती है और उसे विशाल दृष्टि देती हैं। ये सब वस्तुयें उसे जीवनकी ऊंची भूमिका पर प्रतिष्ठापित करती हैं और उसे 'बृहत्तर ध्येयके लिए महत्तर जीवन' जीनेका अवसर प्रदान करती हैं। ग्रामजनोंको बृहत्तर ध्येयके लिए जीवन जीनेका यह अवसर शायद ही मिलता है। उनके मौजूदा जीवनकी सीमित परिस्थितियोंमें वह उन्हें आसानीसे नहीं मिलता। अभी तो उनकी आसक्तिका दायरा उनकी जमीन, उनके पशुधन और उनकी जाति-पांति तक ही पहुंचता है। जैसा किसीने विनोदमें कहा है, उनकी दृष्टिका घेरा बस पांच मिनटका है। अपने गांवके एक छोरसे दूसरे तक जानेमें उन्हें पांच ही मिनट लगते हैं। मर्यादित संपर्कोंके कारण उनकी दृष्टि और उनकी दिलचस्पी मर्यादित बनती है। वे अपने दैनिक जीवनमें ही व्यस्त रहते हैं। उनकी भक्ति अपने कुटुम्बके प्रति या बहुत हुआ तो अपनी जातिके प्रति होती है; राष्ट्रके साथ अपनी आत्मीयताका विचार उनके मनमें नहीं आता। हमारा इतिहास अपने छोटेसे दायरेसे बंधे रहनेकी वृत्तिसे उत्पन्न दुर्बलताओंका इतिहास है। शंकराचार्य जैसे धार्मिक नेताओंने अखिल भारतीय यात्राओंकी प्रथा इसीलिए शुरू की थी कि लोग अपने संकुचित दायरोंसे निकलें और राष्ट्रीयताका विकास करें। अंग्रेजी शासनका दावा था कि हम लोगोंमें राष्ट्रीय भावनाका विकास उसके समयमें हुआ है। गांधीजीकी सभी प्रवृत्तियां और उनके द्वारा स्थापित सारी संस्थायें अखिल भारतीय स्वरूपकी थीं। हमारी राष्ट्रीय एकताका विकास करनेमें इन प्रवृत्तियों और संस्थाओंका महत्त्वपूर्ण योग रहा है। लेकिन इस एकताको कायम रखने और दृढ़ बनानेके लिए प्रान्तीयता और संकुचिततासे ऊपर उठनेकी जरूरत आज भी है। हमारे लोगोंकी इसी विशिष्टताको ध्यानमें रखकर गांधीजीने सागरवृत्तकी कल्पना हमारे सामने रखी है। इस सागरवृत्तका मध्यबिन्दु व्यक्ति है, व्यक्ति गांवके हितमें अपना बलिदान करनेको तैयार रहेगा, गांव आसपासके क्षेत्रके लिए अपना बलिदान करनेको तैयार रहेगा, और इस तरह बढ़ते बढ़ते सारी मानव-जातिका एक मानव-कुटुम्ब बन जायगा। इसलिए ग्राम-जीवनके व्यक्तित्वकी रक्षा तो होनी चाहिये, लेकिन विशालतर आदर्शों और हितोंके लिए हमें

उसका विस्तार तो करना ही होगा। गावोको अपनी यह स्थानिक संकुचितता उच्चतर संगठन द्वारा छोडनी है।

१२. सांस्कृतिक अलगावसे उद्धार

ग्रामजनोका अज्ञान और उनमें मुघडताका अभाव तो कहावतरूप हो गया है। गावमें रहने और काम करनेवाले लोगोंमें प्राणशक्ति खूब होती है, किन्तु उनमें वेश-भूषा, बातचीत आदिकी सफाईकी, ज्ञानकी और परिष्कृतिकी कमी होती है। इसका कारण यह है कि उनका सास्कृतिक विकास रुक गया है। अपने बौद्धिक और सास्कृतिक विकासके लिए उन्हें कोई सुविधा नही मिलती। उदाहरणके लिए, उन्हे सगीत या चित्रकलाकी तालीम नही मिल सकती। इने-गिने भाग्यशाली ग्रामवासी ही उच्च शिक्षण पा सकते है। शहरोमें आसानीसे मिलनेवाला मनोरंजन भी उनके लिए दुर्लभ है। वे ज्यादातर कच्चे मालके उत्पादनमें ही लगे रहते है। कच्चे मालका पक्के मालमें रूपान्तर करनेकी उच्चतर प्रक्रियाके लिए उनके पास कोई साधन-सुविधा नही है। उनकी सारी शक्ति शारीरिक कामोमें ही खर्च हो जाती है, सास्कृतिक विकासके लिए कुछ भी बाकी नहीं रहती। उन्हें अपने कामकी वैज्ञानिक जानकारी भी नहीं होती। सीमित अवसरो और शारीरिक श्रममें ही सारी शक्ति खर्च हो जानेके कारण वे कामको उसके आन्तरिक मूल्योंके लिए या ज्ञानप्राप्तिके साधनके रूपमें करनेकी बात सोच ही नही सकते। ऐसी हालतमें कोई आश्चर्य नही कि उनकी बुद्धि प्राय. अविकसित रह जाती है। ग्राम-जीवनकी इस जडताको दूर करने और उसकी जगह हेतु और बुद्धिसे युक्त जीवनका सचार करनेके लिए गाधीजीने नयी तालीमकी सूचना की थी। नयी तालीम हाथ और बुद्धिका योग स्थापित करती है। जडता और मुघडताके इस अभावकी जगह बुद्धिके प्रकाश और सुसस्कारका प्रवेश तभी होगा, जब ग्राम-जीवन और उनकी प्रवृत्तियाका सगठन नयी तालीमकी पद्धतिसे किया जायगा। इसके लिए गृह और ग्राम इकाइयाको क्षेत्रीय इकाइयोके साथ इस तरह जोडना

होगा कि ये तीनों इकाइयां एक-दूसरेके सहकारमें काम करें और कुटुम्बोंको व्यवस्थित जीवनके अवसर और लाभ मिलें।

१३. परस्पर आदर-भाव

ग्राम-जीवनमें लोगोंमें पारस्परिक परिचय इतना ज्यादा होता है कि वह दोषरूप हो जाता है। ऐसा अति-परिचय अवज्ञाका कारण बनता है। सविनय अवज्ञा आन्दोलनके दिनोंमें जेलोंमें सत्याग्रही कैदी एकसाथ रहते थे, गांवके लोगोंके जीवनमें पायी जानेवाली यह निकटता कुछ वैसी ही है। ये सारे सत्याग्रही समाजके ऊंचे स्तरोंसे आये थे और एक उच्च ध्येयके लिए काम कर रहे थे। फिर भी ऐसा मालूम होता था कि जेल-जीवनके निकट सहवासने उनका सहज सहानुभूतिका गुण नष्ट कर दिया है। उन्हें अपनी आवश्यक वस्तुयें कम मात्रामें मिलती थी, अवसर मर्यादित थे, कोई रचनात्मक प्रवृत्ति नहीं थी, बस, एक ही प्रकारका नीरस जीवन जीना पड़ता था। ऐसी हालतमें इन सद्‌गुण-सपन्न व्यक्तियोंका व्यवहार भी एक-दूसरेके प्रति कभी कभी अनादरका हो जाता था। हमारे गांवोंकी आज ऐसी ही दशा है। किसी भी सर्जनात्मक विचारके अभावमें उनका जीवन नीरस और यांत्रिक हो गया है। हर-एक आदमी दूसरेकी कमजोरियां और दुर्गुण जानता है। पारस्परिक आदर-भाव लगभग नष्ट हो गया है और प्रेरणाके स्रोत सूख गये हैं। हमें गांवके जीवनका उसकी इस हीनावस्थासे उद्धार करना है और विधायक उपायों द्वारा उसे सुधारकी दिशामें मोड़ना है। इस सिलसिलेमें एक जरूरी कदम इस अति-निकटताकी स्थितिको समाप्त करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है, जिसमें लोगोंके बीचमें आदर-भाव प्रेरित करनेवाला अन्तर रहे। इसीलिए सघन क्षेत्र-योजनामें २०,००० की आबादीवाली बड़ी इकाई निश्चित की गयी है। देखा गया है कि ऐसे बड़ी आबादीवाले सघन क्षेत्रोंमें लोग ज्यादा संयम और सभ्यताका व्यवहार करते हैं।

सहकारी खेती

गांवोंमें उच्चतर संगठनको ठोस रूप देनेके लिए यह जरूरी है कि व्यक्तिगत खेतीका सहकारी खेतीमें रूपान्तर करके खेतीकी

पुनर्व्यवस्था की जाय। सहकारी खेतीकी दृढ नींव पर ही दूसरी अनेक सहकारी प्रवृत्तियां, जैसे कि सहकारी डेरी, कच्चे मालको पक्के मालमें रूपान्तर करनेवाले सहकारी उद्योग, सहकारी पद्धतिसे बेचना और खरीदना आदि खडी की जा सकती हैं। सहकारी खेतीके मजबूत आधार पर सहकारी सेवाओंकी योजना भी की जा सकती है। भावी ग्राम-संस्कृतिका निर्माण सहकारी खेतीकी नींव पर ही किया जा सकता है। इसी कारण सघन क्षेत्र अपने गांवोंमें सहकारी खेतीका प्रचार और निर्माण करना चाहते हैं। यहां सहकारी खेतीकी चर्चा गांवोंके उच्चतर संगठनके अंगके रूपमें की जा रही है।

सघन क्षेत्रोंके लिए सहकारी खेती एक नयी वस्तु जरूर है, किन्तु वह ग्राम-अर्थव्यवस्थाकी सर्वांगी दृष्टिसे सोची हुई पुनर्रचनाकी ही एक कडी है। और जब तक ग्राम-पुनर्रचनाकी बात सर्वांगी दृष्टिसे नहीं सोची जाती तब तक फुटकर प्रयत्नोंसे विशेष कुछ होनेवाला नहीं है। इसलिए सहकारी खेती गांवोंके सर्वांगी विकासके लिए आवश्यक उच्चतर संगठनके ही एक हिस्सेके रूपमें अपनायी जाती है।

सहकारी खेती सघन क्षेत्रोंमें अपनाये गये ग्राम-आयोजनका ही स्वाभाविक विकास है। ग्राम-योजनायें ग्रामजनोंके समग्र अभ्युदय, सामाजिक सुरक्षा, आरोग्य और शिक्षणकी सेवाओं, न्यूनतम आय और समयके बुद्धियुक्त उपयोगके लक्ष्य रखती हैं। इन लक्ष्योंको ग्राम-अर्थरचनाका विस्तार करके और समय तथा सम्पत्तिका बुद्धि-पूर्वक सदुपयोग करके सिद्ध करना है। इसके लिए आवश्यक आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन करने पडेंगे। इस दिशामें ग्राम-योजनाओंके द्वारा थोडी प्रगति अवश्य हुई है तथा आवश्यक परिवर्तनोंके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करनेमें कुछ सफलता मिली है; किन्तु सारी सम्पत्ति पर नियंत्रण न होनेके कारण ग्राम-अर्थरचनाका उतना विकास नहीं हो सका है, जितना इन लक्ष्योंको पूरा करनेके लिए होना चाहिये। ग्राम-योजनायें बनाते समय ही इस कडीकी कमी महसूस होती थी। यह कम पडनेवाली कडी पूरी करनेके लिए ही मानो सहकारी खेती आयी। इस तरह सहकारी खेती ग्राम-योजनाओंका एक भाग बन गयी

और जिन गावोंने ग्राम-योजनाये तैयार की थी उन्होंने तुरन्त ही सहकारी खेतीका कार्यक्रम स्वीकार कर लिया।

सहकारी खेतीकी प्रेरणा

१. अर्थ-व्यवस्थाके विकासके लिए मनुष्यका विकास करो

किसान सहकारी खेतीकी पद्धति स्वीकार करे, इसके लिए उन्हें इतना ही नही कहा गया था कि सहकारी खेतीसे आर्थिक लाभ होता है, बल्कि उन्हे यह भी समझाया गया था कि उससे उनके व्यक्तित्वका विकास होता है। और इसका उन पर अच्छा असर हुआ था। यदि किसानोको अपने सर्वांगीण विकासकी लगन लग जाये, तो वे ग्राम-अर्थरचनाका सकलन करनेके काममे जुट जायेंगे। यह एक तालीमकी प्रक्रिया है, जिसमें किसानोको तैयार कार्यक्रम नही दिये जाते। मुख्य हेतुको ध्यानमें रखकर वे अपने कार्यक्रम खुद तैयार करते है। और इस काममें उन्हे मदद दी जाती है। ऐसे कार्यक्रम तैयार करते समय किसानोको सहकारी खेतीकी अनिवार्यताका खयाल आ जाता है। उदाहरणके लिए, उनकी समझमें यह आ जाता है कि वे अपने समयका बुद्धिपूर्वक बटवारा करके अपने सास्कृतिक विकासके लिए आवश्यक अवकाश सहकारी खेतीमे ही पा सकते है। सहकारी खेतीसे ही उनकी आर्थिक स्थिति विकासशील बनेगी और उन्हे ज्यादा सुविधायें और सेवाये मिलेगी। विकासके ज्यादा अवसर उपलब्ध हो, इसके लिए भी उन्हें सहकारी खेतीकी ओर झुकना पड़ता है।

२. रोगके उपचारके बजाय रोगीका उपचार करो

विकासशील अर्थ-रचनाके एक भागकी तरह सहकारी खेती गावके हरएक वर्गको अपील करती है। बडे किसानोंको और शिक्षित युवकोको, छोटे किसानोको, भूमिहीनोको और कारीगरोको और खासकर स्त्रियोको तो वह बहुत अपील करती है। क्षेत्रोमें प्रयोगके रूपमें सहकारी खेती समितिया शुरू करते समय इस अपीलका विशेष उपयोग किया गया था। इस पद्धतिमें रोगके बजाय रोगीके इलाज पर ज्यादा

जोर दिया जाता है। सहकारी खेतीकी चर्चा सामान्य तौर पर की जाय, तो लोग उसके लिए विशेष उत्साह नहीं दिखाते। इसलिए ऐसा निश्चय किया गया कि पसन्द किये हुए गावोंमें उपर्युक्त सभी वर्गोंके साथ परामर्श करके यह मालूम किया जाय कि वे किन कारणोंसे सहकारी खेती समितियोंमें शामिल होनेके लिए प्रेरित होंगे। ऐसा करनेसे लोगोको अपने उन्नत स्वार्थका खयाल आया। सच तो यह है कि इस पद्धतिसे उनकी दृष्टिमें ज्ञानपूर्वक परिवर्तन हुआ।

(अ) सांस्कृतिक अपील: यह खयाल कि सहकारी खेतीसे उन्हें लाभ होनेवाला है, सबसे पहले बड़े किसानो और शिक्षित युवकोको आया। वे समझ गये कि इससे उन्हें विकासके ज्यादा अवसर प्राप्त होंगे। यह वर्ग ऐसे अवसरोका भूखा है; और यदि उसे ऐसे अवसर गावोमें नही मिलते, तो वह शहरोमें जानेकी कोशिश करता है। उसने देखा कि सहकारी खेतीसे जीवन व्यवस्थित बनता है और इससे सास्कृतिक विकासके लिए या अपनी पसन्दगीका काम करनेके लिए अवकाश मिलता है। उन्होने यह भी देखा कि सहकारी खेतीमें उनके जमीनके मालिकी हकके लिए पूरा सरक्षण है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि सहकारी खेतीसे सिर्फ छोटे किसानोको ही लाभ है, क्योंकि सहकारी खेतीके द्वारा वे अपनी सम्पत्ति और साधन इकट्ठे करके अपनी व्यक्तिगत कमियोकी पूर्ति कर सकते हैं। सहकारी खेती एकागी कार्यक्रमके रूपमे की जाय तो ऐसा ही होगा। किन्तु यदि सहकारी खेतीका विचार समग्र कार्यक्रमके एक अगके रूपमें किया जाय, तो वह उच्च विकासके अवसर देता है और यह बात साधन-सम्पन्न लोगोके ध्यानमे सबसे पहले आती है और वे ही उसे सबसे पहले स्वीकार करते है। स्त्रिया भी उसके इसी लाभसे प्रभावित होकर उसकी समर्थक बनती हैं। उन्हे यह बात समझमें आ गयी कि सहकारी ग्राम-अर्थरचनाकी प्रतिनिधि-जैसी इस सहकारी खेतीसे ही उन्हे अपनी रोजकी बेगारसे छुट्टी मिल सकती है। सयुक्त कुटुम्बकी प्रथा वेगसे नष्ट हो रही है, जिससे स्त्रियोका काम बढ गया है। उन्हे लगा कि सहकारी खेतीसे और दूसरी सहकारी प्रवृत्तियोसे उनका समय बहुत

दच सकता है। कारण, ग्राम-जीवनके सहकारी सगठनमें उनके कई कामोंकी ग्रामस्तर पर व्यवस्था हो जाती है। और इसी तरह ग्राम-स्तर पर कई सेवाओंकी व्यवस्था भी हो जाती है। हमारी नजरमे ऐसे उदाहरण भी आये जहा पुरुष सकुचाते मालूम होते थे, पर उन्हें स्त्रियोंने सहकारी समितियोंमें शामिल होनेके लिए प्रोत्साहित किया।

(आ) साधनहीनोंको अपील : भूमिहीन मजदूरोंको तो सहकारी खेती समितियोंमें शामिल होनेमें केवल लाभ ही दीखता है। उसमें उन्हें सालभर आजकी अपेक्षा कही ज्यादा अच्छी मजदूरी पर न्यूनतम आयकी आशा दिखाई देती है। समितिका सभ्य बननेसे उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। सामूहिक चिंतन और कार्योंमें भाग लेनेसे उनकी शक्तिका विकास होता है। सामाजिक सुरक्षाके हेतुसे कार्यान्वित किये जा रहे कार्यक्रमोंके शुभ प्रभावसे उनमें सामाजिक उत्तरदायित्वकी भावना पैदा होती है। छोटे किसानोंको तो उससे स्पष्ट लाभ ही है। सबके लाभके लिए साधनोंके इकट्ठे होनेके सिवा उन्हे एक अतिरिक्त लाभ यह भी होता है कि वे दूसरे उपयोगी काम कर सकते हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे सहकारी सगठनोंके व्यवस्थापक भी हो सकते हैं। जब ऐसा होता है तब अभी तक जो महत्त्व सम्पत्तिको मिलता था वह योग्यताको मिलने लगता है। सहकारी खेतीके द्वारा भूमिहीनो और छोटे किसानोंको ऐसी सुविधायें और सेवायें मिलने लगती है, जिनका उन्होंने स्वप्नमें भी विचार नहीं किया था।

(इ) कारीगरोंको अपील : सहकारी खेतीका लक्ष्य पूर्ण रोजगारी पैदा करना, स्थानिक सम्पत्तिके सपूर्ण उपयोगको शक्य बनाना तथा औद्योगिक मालके भावों और खेतीकी उपजके भावोंमे समानता लाकर ग्राम-अर्थव्यवस्थामें विविधताका सचार करना है। इससे कारीगर वर्गके लिए सहकारी खेतीमें से औद्योगिक कार्यक्रमकी शक्यता खड़ी होती है।

इस तरह सहकारी खेती सर्वांगीण अर्थ-रचनाके विकासके लिए और ग्राम-जीवनके विकासके अवसरोंका विस्तार करनेके लिए ठोस भूमिका तैयार करती है।

३. आदर्श केन्द्रका निर्माण

दूसरा लक्ष्य ऊपर बतायी गयी कार्य-पद्धतिके अनुसार सर्वांगीण ग्राम-अर्थरचनाका आदर्श नमूना तैयार करनेका था। इस प्रयोगके लिए उत्तर प्रदेशके कमेलपुर नामक गावको चुना गया। चौधरी नरेन्द्रसिंह और मुंशी रामजसके प्रेरणाप्रद नेतृत्वमें गावने उन्नत स्वार्थकी दृष्टि अपनायी है। हम उसे अपने ग्राम-निर्माण कार्यक्रमकी प्रयोगशाला बनाना चाहते थे और वहा इसके लिए सचमुच अनुकूल वातावरण पैदा हो गया है। पिछले चार वर्षोंमें उसने जो भी कार्यक्रम हाथमें लिये है, उनमें उसने प्रयोगकी सच्ची वृत्ति अपनायी है। सहकारी खेती भी उसने प्रयोगकी दृष्टिसे ही अपनायी है। यह गाव अपनी खेतीका संगठन सर्वोदयके आदर्शोंके अनुसार खड़ा करनेका आग्रह रखता है। इसलिए वह अन्त्योदयकी दिशामें सच्ची सहकारी भावनामें प्रगतिशील नीति अपना सका है। कमेलपुर एक आदर्श ग्राम बने इसके लिए विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। कमेलपुर अपने रचनात्मक और सहकारी प्रयत्नोंसे सघन क्षेत्रके दूसरे गावोंमें भी सहकारी खेतीकी हवा फैला रहा है। कमेलपुर आसपासके दूसरे गावोंके किसानोंके लिए मात्र चर्चाका विषय नहीं बल्कि यात्राधाम बन गया है। कमेलपुरका यह माहात्म्य उन्हें भी सहकारी खेती अपनानेकी प्रेरणा देता है और अब कई गाव सघन क्षेत्रोंके संचालकोंसे सहकारी खेती समितिया बनानेके सम्बन्धमें मार्गदर्शन माग रहे है। संचालक ऐसी समितियोंकी संख्या बढ़ानेका आग्रह नहीं रखते। वे तो संख्यामें कम किन्तु आदर्श खेती समितिया बनानेका आग्रह रखते हैं, जिसमें कि खेती समितिया बनानेकी इच्छा रखनेवाले दूसरे गावोंको सचमुच मार्गदर्शन दिया जा सके।

४ पूरक संगठन

सघन ग्राम विकास आज सहकारी खेती समितियोंमें जिस हद्दतक शामिल हो रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि सघन क्षेत्र संगठन अपने संचालकों जनताके साथ निकटता और आत्मीयताका सम्बन्ध

बनाया है। सहकारी खेतीसे होनेवाले लाभोंके विषयमें चाहे जितना समझाया जाय, किन्तु सामान्यत किसान ऐसे नये साहसोंमें शामिल होनेके लिए जल्दी तैयार नही होते। सहकारी खेतीके परिणामोंसे अनजान होनेके कारण वे उसे स्वीकार करनेमें हिचकिचाते हैं। जमीनके मालिकी हकके नये सुधारोंसे उनके मनमें सन्देह पैदा हो गया है। सहकारी खेती समितियोंके व्यवस्थापकोंकी प्रामाणिकतामें विश्वास करते हुए भी उन्हें झिझक होती है। इसलिए पहला प्रश्न तो इस कठिनाईको पार करनेका है। यानी किसानोंमें उनकी भावी स्थितिके और खेतीकी नयी संयुक्त व्यवस्थाकी पद्धतिके विषयमें विश्वास पैदा करनेका है। जिन्होंने अपनी सचाई और ईमानदारी आदिके द्वारा लोगोंका सम्पूर्ण विश्वास जीता हो, ऐसे स्थानिक नेता ही यह मुश्किल काम कर सकते हैं। इसलिए गावोंमें ऐसा नेतृत्व पैदा करना हमारी पहली आवश्यकता है। सघन क्षेत्र संगठन अपने ग्राम-आयोजनके कार्यक्रमके द्वारा और उसमें खासकर अन्त्योदय पर जोर देकर ऐसे नेतृत्वकी तालीमके लिए उपयुक्त परिस्थितियां पैदा कर सका है। सहकारी खेतीकी ऊपरी इमारत इस नींव पर ही खडी की जा सकती है।

सहकारी खेती समिति खडी करनेके बाद उसकी रजिस्टरी करानेका काम किसानोंके लिए बहुत मुश्किल होता है। उसके लिए काफी मेहनत करनी पडती है और महीनों तक राह देखना पडती है। सरकारी अधिकारियोंकी मददसे जरूरी कागज तैयार करना पडते हैं और दूसरी अनेक विधियां पूरी करनी पडती हैं। फलत किसानोंका धीरज खतम हो जाता है। सम्बन्धित अधिकारियोंके व्यवहारसे ऐसा मान पडता है कि उनका काम सहकारी खेतीको प्रोत्साहन देना नहीं, मात्र कागजोंकी जाच करना है। इस सारी विधिको जल्दी निपटानेके लिए सघन क्षेत्र संगठनको बडा प्रयास करना पडा था।

इसके बाद योजनाके अमलकी बारी आती है। इसमें पहला काम सारी साधन-सम्पत्ति सबके उपयोगके लिए एकत्र करनेका होता है। यह बहुत नाजुक और जटिल काम है। उसमें जमीनके गुणके

अनुसार हिस्सोंका निर्णय करना पड़ता है और पशु-सम्पत्ति तथा साधनोंकी कीमतका हिसाब करना पड़ता है। जिस पर सब लोगोंका विश्वास हो, ऐसा नेता हो इस मुश्किल कामको इस तरह पूरा कर सकता है कि जिससे सबको संतोष हो। कमेलपुरमें तो लोगोंने सहकारी खेतीका कार्य प्रयोगकी दृष्टिसे शुरू किया था। इसलिए साधन-सम्पत्ति एकत्र करनेके काममें मुश्किल नहीं आयी। हिस्सों (शेयरों)का निर्णय करनेमें जमीनके गुणका विचार किये बिना सब जमीनोंकी कीमत एक ही मान ली गयी थी।

चौथा काम उत्पादनके आयोजनका है। उसमें उगायी जानेवाली फसलोंका विचार करना पड़ता है, मजदूरीकी दर तय करनी पड़ती है और अतिरिक्त मानव-बलका उपयोग कैसे किया जाय, इस प्रश्नको हल करना पड़ता है। इस काममें सघन क्षेत्र संगठनको महत्त्वपूर्ण भाग अदा करना था। कमेलपुरमें लगातार तीन वर्षसे वार्षिक योजनायें तैयार की जा रही थीं और इसलिए लोगोंको उत्पादन-योजना तैयार करनेकी काफी तालीम मिल चुकी थी। इन योजनाओंको तैयार करनेमें एक अतिरिक्त लाभ यह हुआ कि कम आयवाले वर्गकी अस्वस्थ मनोदशा दूर हो गयी। ग्राम-योजना स्थानिक साधनोंका सदुपयोग करके ही बनानी पड़ती है। इसलिए उसमें लोगोंकी इस अस्वस्थ मनोदशाको दूर करना जरूरी होता है। सच तो यह है कि साधनोंके अभावकी अपेक्षा लोगोंकी अस्वस्थ मनोदशाकी कठिनाई ज्यादा रुकावट डालती है। इसलिए संगठनने इस कठिनाईको हल करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और लोगोंमें ज्यादा अच्छा जीवन बितानेकी इच्छा पैदा करके और इस प्रयत्नमें उन्हें हरएक कदम पर सक्रिय सहारा देकर उसे अन्तमें सफलतापूर्वक हल किया। कमेलपुरमें अधिकांश किसानोंके घर कच्चे थे — उनकी दीवालें मिट्टीकी थीं और छप्पर घास-फूसका। उन्होंने पिछड़े वर्गोंको मिलनेवाली सरकारी मदद लेकर गांवमें हरिजनोंके लिए पक्के मकान बना दिये। इसके सिवा गांवकी जमीनमें से उन्हें शाक-भाजीकी बाड़ियां करनेके लिए भी जमीन दी। अन्त्योदयके इस कार्यसे उन वर्गोंमें अच्छा जीवन बितानेकी इच्छा पैदा हुई और यह

विश्वास भी पैदा हुआ कि ऐसी इच्छा उचित है तथा उसकी सिद्धि असंभव नहीं है। इस तरह सघन क्षेत्र संगठनने ग्राम-आयोजनकी तीन मुख्य शर्तें पूरी कीं : (१) जरूरी मानसिक भूमिका तैयार करना, (२) स्थानिक साधन-सम्पत्तिका उपयोग करनेकी पद्धतिका प्रदर्शन, और (३) ग्रामोद्योगोंके द्वारा अतिरिक्त मानव-बलको जीविका देना।

मतलब यह कि सहकारी खेतीको सफल बनाना हो तो उसके लिए एक ऐसे पूरक संगठनकी जरूरत होती है, जो केवल पूरक कार्यक्रम ही नहीं देगा बल्कि सहकारी खेती समितियोंको हर कदम पर मार्गदर्शन भी देता रहेगा। इसके लिए सघन क्षेत्र संगठन, जिसका लक्ष्य ग्राम-अर्थरचनाका सर्वांगीण विकास करना तथा विकेन्द्रित सहकारी अर्थतंत्रका ढांचा खड़ा करना है, बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। सघन क्षेत्र संगठन २०००० की आबादीके क्षेत्रमें काम करता है। यह संगठन स्थानिक लोगोंका ही बना हुआ होता है और उसके मुख्य कार्यकर्ताओंमें स्थानिक नेता ही होते हैं। खादी ग्रामोद्योग कमीशनके निकटके मार्गदर्शनमें ग्राम-योजनायें तथा क्षेत्रीय योजनायें तैयार करने उन्हें कार्यान्वित करनेका सारा काम इसी संगठनको सौंपा गया है।

५. सर्वांगीण कार्यक्रम

सहकारी खेतीको सफल बनाना हो तो ग्रामोन्नतिके सर्वांगीण कार्यक्रमकी योजना करना चाहिये। सहकारी खेतीसे सघन खेतीको वेग मिलता है और उसकी हद तक वह अतिरिक्त मानव-शक्तिकी खपतकी व्यवस्था करता है। किन्तु साथ ही किये जानेवाले कार्यके ज्यादा व्यवस्थित संगठनके द्वारा वह खेतीमें लगी हुई मानव-शक्तिको मुक्त भी करता है। खेतीसे मुक्त हुए इन लोगोंको दूसरे उत्पादक कार्योंमें लगाना होगा। खादी-उत्पादन, दूध-उत्पादन तथा कच्चे मालका पक्का माल बनानेवाले उद्योगोंमें इन लोगोंको लगानेके लिए काफी अवकाश होता है। परन्तु इन उद्योगोंको कच्चा माल नियमित रूपसे मिलना चाहिये और बाजारकी सुविधा होनी चाहिये। सहकारी खेतीसे ये सारी सुविधाएं मिल सकती हैं। इसलिए जिस

तरह सहकारी खेतीको सफलताके लिए दूसरे सहायक उद्योगोंकी आवश्यकता है, उसी प्रकार उन सहायक उद्योगोंके लिए सहकारी खेतीकी आवश्यकता है। मतलब यह कि सहकारी खेती और ऐसे सहायक उद्योग एक-दूसरेके पूरक हैं। ऐसे सर्वांगीण कार्यक्रमके परिणाम-स्वरूप गांवका कुल उत्पादन बढ़ता है। साधन-सम्पत्ति और संगठन-शक्तिकी संहति (pooling) से सघन खेती शक्य बनती है और सघन खेतीसे खेतीका उत्पादन बढ़ता है। फसलोंका समुचित आयोजन करके की जानेवाली सघन खेतीमें हरा घास-चारा लगातार मिलता रहता है और उससे डेरी-उद्योगके विकासमें बहुत सहायता मिलती है। खेती-कामसे मुक्त हुई मानव-शक्तिको दूसरे उद्योगोंमें काम दिया जाता है। इस तरह दूसरे उद्योगोंका उत्पादन भी बढ़ता है। मानो उत्पादन केवल खेतीका ही नहीं बल्कि गांवका कुल उत्पादन बढ़ता है।

विवादका विषय

सहकारी खेतीकी बातने हमारे देशमें भारी विवाद खड़ा कर दिया है। इस आन्दोलनकी आलोचना करते हुए और लोगोंको उससे विरत करनेके लिए पुराने अनुभवोंका उल्लेख किया जाता है। परन्तु उस समयकी सहकारी खेती एक एकांगी कार्यक्रम था। वह महज आर्थिक कार्यक्रमकी तरह नियोजित और कार्यान्वित किया गया था। सघन क्षेत्रोंमें अब जिस सहकारी खेतीका प्रयोग हो रहा है, वह भूतकालके अनुभवोंकी पुनरावृत्ति नहीं है। वह तो ग्राम-सभ्यताके नव-निर्माणकी दृष्टिसे की जा रही एक नयी वस्तु है। जहा ग्राम-योजनाके द्वारा अनुकूल वातावरण पैदा कर लिया गया हो, ऐसे चुने हुए गावोंमें नये प्रकारका खेती-संगठन खडा करनेकी दृष्टिसे उसे एक प्रयोगकी तरह किया जा रहा है। यहा हम इस विवादके निम्नलिखित मुद्दोंकी चर्चा करेंगे

१ वास्तविकता,
२ वर्ग-संघर्ष,
३ परिवारकी स्वतंत्रता,

४. प्रेरणा,

५. सेवा-सहकारी समितियां तथा सहकारी खेती।

१. वास्तविकता

वास्तविकता किसे कहना चाहिये? जीवनकी हकीकतको या जीवनके ध्येयको? विचार करनेसे प्रगट होगा कि उसमें दोनोंका ही समावेश होता है।

सामाजिक विकासके इतिहासमें ऐसा समय आता है कि जब सामाजिक वर्गोंको स्थिरता और प्रगतिमें से किसी एकका चुनाव करना पड़ता है। प्रगतिका चुनाव जीवनके ध्येय पर बल देता है और स्थिरताका चुनाव जीवनकी वास्तविकता पर बल देता है। ध्येयकी भावना साहस और प्रगतिके गुणोंका विकास करती है, जब कि वास्तविकतासे समझौता कर लेनेकी वृत्ति मनोविकृतिको पैदा करती है। इसके सिवा, जिस तरह मानव-जीवन कभी ज्योंका त्यों नहीं रहता, उसी तरह जीवनकी वास्तविकतायें भी कभी ज्योंकी त्यों नहीं रहती। जीवनकी उन्नतिके साथ साथ जीवनकी वास्तविकतायें भी बदलती जाती हैं और जो लोग इन परिस्थितियोंके लिए तैयार नहीं होते उन्हें बड़ी मुश्किलसे गुजरना पड़ता है। वे नयी परिस्थितियोंके अनुरूप नये सन्तुलन दृढ़ निकालनेमें विफल सिद्ध होते हैं। और सतुलनके अभावमें विघटन पैदा होता है। यानी प्रगति और स्थिरताके बीचमें किया जानेवाला चुनाव परिणामकी दृष्टिसे प्रगति और विघटनके बीचका चुनाव सिद्ध होता है। हमारे ग्राम-जीवनमें विघटनकी प्रक्रिया इतनी स्पष्ट है कि वास्तविकताके नाम पर चालू स्थितिको ही बनाये रखनेकी हिमायत करनेवालोंकी दृष्टिसे भी वह छुपी नहीं रह सकती। यदि चालू स्थितिको ही बनाये रखनेकी कोशिश की गयी, तो विघटनकी प्रक्रिया और तीव्र हो जायगी।

कभी कभी अच्छे कार्यक्रम भी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें बेकार बन जाते हैं, उनसे जनताको कोई लाभ नहीं होता। सहकारी खेतीके कार्यक्रमका ऐसा ही अंजाम आया है। उसने अत्यन्त चिन्तनशील

लोगोंके मनमें भी मतभेद उत्पन्न किया है। इस मतभेदने उन लोगोंको देशके भावी विकासके लिए निश्चित रुख अपनानेके विषयमें विचार करनेकी प्रेरणा दी है। सहकारी खेतीके लाभोंके बारेमें किसी प्रकारका मतभेद नहीं है; मतभेद इस बारेमें है कि किन परिस्थितियोंमें सहकारी खेतीकी राष्ट्रीय योजना तैयार करके उस पर अमल करना चाहिये। सहकारी खेतीके विरोधियोंकी दृष्टिमें यह कार्यक्रम तभी मूल्यवान बन सकता है, जब किसान समझ-बूझकर स्वेच्छासे तथा अधिक अच्छा सगठन रचनेकी दृष्टिसे उसे स्वीकार करें। इस प्रकारके स्वाभाविक विकाससे ऐसी परिस्थितियां खड़ी होनेका भय नहीं रहेगा, जिससे गांवके लोग नये सगठनों पर अपना काबू खो दें। वस्तुत. वह गांवकी प्राचीन सस्कृतिका विकास होगा। परन्तु ऐसा माना जाता है कि सरकारी अधिकारी बाहरी पैसे और सुविधाओंकी सहायतासे सहकारी खेतीके कार्यक्रमका अमल निश्चित लक्ष्यांकोंवाली राष्ट्रीय योजनाके एक भागके रूपमें करेंगे। यदि ऐसा हुआ तो किसान उस कार्यक्रमकी सच्ची कीमत नहीं आंक सकेंगे। उस स्थितिमें वह ग्राम-समाज द्वारा स्वय तैयार किया हुआ कार्यक्रम नहीं होगा, बल्कि राज्य द्वारा दिया हुआ एक तैयार कार्यक्रम होगा। इस प्रकार सहकारी खेतीसे किसीका विरोध नहीं है, परन्तु बाहरसे आनेवाले तैयार कार्यक्रमसे विरोध है।

यदि गांवोंकी अर्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्थाको विकसित करनेके लिए सारे साधनोंको एकत्र करना अनिवार्य हो, तो व्यक्तिगत खेतीकी अपेक्षा सहकारी खेती, सहकारी डेरी, सहकारी खरीद-बिक्री तथा सहकारी पद्धतिसे कच्चे मालका पक्के मालमें रूपांतर करनेवाले उद्योगोंके कार्यक्रम अधिक वास्तविक कार्यक्रम माने जायगे।

२. वर्ग-सघर्ष

क्या सहकारी खेतीके फलस्वरूप ग्राम-अर्थरचनामें वर्ग-सघर्ष खड़े होंगे? इसमें सघर्ष खड़े होनेकी कोई बात ही नहीं है। वे तो आजकी परिस्थितिमें मौजूद ही हैं। उन्हें मिटानेकी जरूरत है, न कि उनकी उपेक्षा करनेकी। आजकी छिन्न-भिन्नताकी परिस्थितिमें से ये सघर्ष अनिवार्य रूपमें जन्म लेते हैं। आज भूमिहीन मजदूरोंके हित

किसानोंके हितोंके साथ टकराते हैं। सहकारी खेतीमें खेत-मजदूरोंकी आशायें बढ़ेंगी। वे किसानोंके साथ समान प्रतिष्ठा भोगनेकी इच्छा रखेंगे तथा आजके बनिस्बत खेतीके उत्पादनका अधिक बड़ा हिस्सा मांगेंगे। परन्तु किसानोंके हितोंको नुकसान पहुंचा कर उनकी ये आशायें पूरी नहीं की जायंगी। सघन खेती, डेरी तथा ग्रामोद्योगोंके संयुक्त कार्यक्रमोंसे किसानों तथा खेत-मजदूरों दोनोंको लाभ होगा तथा उनके आपसी सम्बन्ध भी सुधरेंगे।

आज जो परिस्थिति है उसे वैसी ही जारी रखनेसे वर्ग-संघर्ष दूर नहीं होंगे। इस परिस्थितिमें तो ये संघर्ष बने ही रहेंगे। परन्तु किसानों तथा खेत-मजदूरोंके आपसी हितोंमें सुमेल और संवादिता पैदा करनेसे ये संघर्ष जरूर दूर होंगे। इन संघर्षोंका मूल कारण है मर्यादित सम्पत्ति तथा मर्यादित अवसर। अतः सम्पत्ति और अवसरोंको बढ़ानेसे यह आपसी सुमेल सधेगा। इस प्रकार रचनात्मक दृष्टिबिन्दुसे सिद्ध किये हुए विकासमें संवादिता और सुमेल निहित है। इसीको गांधीजी रचनात्मक कार्यक्रम कहते थे। वे गांवोंके कच्चे मालसे पक्का माल बनाकर तथा धूलमें से धन पैदा करके रोजीके अवसर बढ़ानेकी बात कहा करते थे। यदि आत्म-निर्भर अर्थ-रचनाके द्वारा आर्थिक प्रवृत्तियां बढ़ाई जायं तो गांवोंकी समस्त मानव-शक्तिको काम दिया जा सकता है। गांवोंके संघर्षको मिटानेका यह एकमात्र निश्चित मार्ग है। यह भी यही बताता है कि एकांगी कार्यक्रमके रूपमें सहकारी खेती कभी सफल नहीं हो सकती। ग्राम-जीवनके संतुलित विकासकी दृष्टिसे बनाये गये सर्वांगीण कार्यक्रमके एक भागके रूपमें ही सहकारी खेतीकी बात सोचनी होगी। उससे गांवके अलग अलग हितोंके बीच निश्चयात्मक और रचनात्मक ढंगसे सुमेल साधा जा सकेगा।

रचनात्मक तथा सहकारी प्रयत्न द्वारा आर्थिक प्रवृत्तियोंका विकास करनेसे ग्राम-जीवनका तनाव कम होता है। इन सब कार्योंकी गति धीमी रहना अनिवार्य है, ऐसा मान लें तो भी इनसे आपसी तनाव हलका होगा। सहकारी खेती समितियोंके सदस्य दूसरोंके सोचे हुए सुधार हम स्वीकार कर लें, ऐसी आशा रखनेकी जरूरत नहीं है। अगर

सहकारी खेतीके सपूर्ण आन्दोलनको ऐच्छिक बनाना हो, तो सदस्योंके हृदय-परिवर्तन पर अर्थात् सदस्योंकी नये मूल्योंकी समझ पर आधार रखना होगा। समझौता स्वेच्छापूर्ण कार्यकी आत्मा है। अगर सारे वर्ग — सम्पत्तिशाली वर्ग भी — स्वेच्छासे सहकारी प्रयत्नोंमें भाग लें, तो समय बीतने पर विकासकी प्रक्रिया सच्ची दिशामें मुड़ेगी। इस प्रकारके रूपांतरकी अपेक्षा रखनेवाले सामाजिक प्रयत्नमें उतावली करनेसे सफलता नहीं मिलती।

३. परिवारकी स्वतंत्रता

सहकारी खेतीके कार्यक्रमसे किसान अपनी स्वतंत्रता खो देंगे, ऐसा भय बताया जाता है। बेशक स्वतंत्रता मानवके जीवनको सार्थक बनाती है। किसी भी भौतिक लाभके लिए इस स्वतंत्रताको खोया नहीं जा सकता। परन्तु प्रत्येक परिवारको गांवको मिली हुई कुल स्वतंत्रताका एक अंश ही भोगनेको मिलता है। जिसमें उत्पादन और अवसर दोनों मर्यादित हों ऐसी छिन्न-भिन्न ग्राम-रचना अथवा अर्थ-रचनामें इन [illegible] स्वतंत्रताकी मात्रा आखिर कितनी होगी? इस छिन्न-भिन्नताके [illegible] आन्तरिक संघर्ष लगातार बना रहता है। यदि गांवके सारे परिवारोंमें सुमेल हो तो ही प्रत्येक परिवारकी स्वतंत्रताका कोई अर्थ हो सकता है। आज किसानोंका कारीगरों तथा खेत-मजदूरोंके [illegible] सम्बन्ध नहीं होता। गांवका व्यापार गांवकी आर्थिक [illegible] मदद नहीं करता। वह व्यापार तो शहरी मनोवृत्तिवाला और [illegible] और [illegible] बन गया है। जिसकी वजहसे थोड़ी-[illegible] सामाजिक [illegible] बनी रहती थी और कामका विभाजन होता था [illegible] भी टूटने लगे हैं। इस तरह उनकी [illegible] स्वतंत्रता भी नष्ट हो गई है। ऐसी स्थितिमें गांवके [illegible] आम जनताका [illegible] या शहरोंमें चले जानेकी [illegible] है। और गांवकी आम जनताका शोषण, गरीबी, दु:ख, [illegible] तथा [illegible] और अवसरोंका अभाव भोगनेकी [illegible] है। तो क्या स्वतंत्रता खो जानेका भय दिखानेवाले [illegible] छिन्न-भिन्नताके [illegible] प्रभावके नीचे आम

निर्भर करते हैं। वैयक्तिक किसानोंके बजाय किसानोंके व्यवस्थित दलोंके साथ काम लेनेमें उन्हें अधिक लाभ होगा, क्योंकि नई व्यवस्थासे कामके अधिक अवसर तथा सुविधायें प्राप्त होंगी और सेवाओंके बदलेमें मेहनताना वगैरा भी अधिक मिलनेकी सभावना है।

कच्चे मालसे पक्का माल बनानेवाले उद्योगोंमें लगे हुए पेशेवर कारीगर भी ग्राम-सहकारी समितिमें जुड़ना पसद करेंगे, क्योंकि इससे उन्हें नियमित रूपमें कच्चा माल मिल सकेगा और अपने तैयार मालको बेचनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। वे अपनी इच्छासे ही सहकारी समितिके सदस्य बनेंगे। अगर वे सदस्य नहीं बनेंगे तो भी समिति ग्राम-अर्थतत्रके सर्वांगीण आयोजनके हितमें उनकी पूरी शक्तिका उपयोग करना चाहेगी। परन्तु वे यदि समितिके सदस्य बन जायगे तो उन्हें समितिके फडमें से दी जानेवाली शिक्षण तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी सेवाओंका भी लाभ मिलेगा।

इस तरह गावके सर्वांगीण विकासके कार्यक्रमसे ऐसा वातावरण उत्पन्न होगा जिसमें अपने धन्धेके खुद ही मालिक हों ऐसे सब परिवार सयुक्त सेवाओं तथा उत्पादनकी व्यवस्था करनेवाली सहकारी समितिके सदस्य बननेके लिए प्रेरित होंगे। जब पूरा गाव खरीद-बिक्री तथा कच्चे मालसे पक्का माल बनानेका काम सहकारी पद्धतिसे करता है, तब गावके व्यापारीके अकेले ही अपना वैयक्तिक धधा कर सकनेका सवाल ही नहीं रहता।

४ प्रेरणा

जब तक गावके 'मनुष्य' का विकास न हो तब तक ग्राम 'अर्थ-रचना' का निर्माण क्या हो सकता है? तुलसीदासजी कहते हैं: 'जहां सुमति तहं संपति नाना जहां कुमति तहं विपति निदाना।' गावका मनुष्य जिस हद तक अपनी निष्क्रिय मनोदशाका त्याग करके गतिशील बनेगा उसी हद तक वह समृद्ध बन सकेगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो उसे समृद्ध बननेके लिए जाग्रत बनना पड़ेगा। यदि गावका मनुष्य अविकसित रहे तो गावकी समृद्धिसे क्या लाभ होगा? जीवनका ध्येय केवल अच्छी अच्छी वस्तुओंका उपभोग कभी हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार गावका मनुष्य विकासका साधन और साध्य दोनो बनता है। व्यक्तियोंकी स्वार्थबुद्धिको अपील करे ऐसे प्रलोभनोंको प्रेरणा नहीं कहा जा सकता। ऐसे प्रलोभनोंसे उनका पतन होता है। क्योंकि वे स्वार्थी बनते हैं और ग्राम-समुदायसे अलग पड़कर वर्गका रूप धारण करते हैं। जब वर्ग प्रेरणाकी बातें करते हैं तब वास्तवमें तो वे प्रलोभनोंकी आशा रखते हैं। वे ग्राम-समुदायको अपने स्तरोंसे मापते हैं। परन्तु स्वाधीन रोजी पर निभनेवाला ग्राम-समुदाय तो सुख तथा दुःखका एकसा विभाजन करके काम करनेमें सतोष मानता है। सघन क्षेत्रोंकी सहकारी समितियोंमें बिलकुल ऐसा ही होता है। समितिके सदस्य परिवारकी भावनासे काम करते हैं और सामूहिक साहसमें हाथ बटानेका काम व्यक्तिकी मरजमनसी पर छोड़ देते हैं। परिवारोंकी तरह समितियोंमें भी कमजोर व्यक्तिको सजा नहीं दी जाती, परन्तु उसके प्रति सहानुभूति रखी जाती है।

सबके लिए प्रेरणा

सामान्यत. जब प्रेरणाकी चर्चा की जाती है, तब भद्र लोगोंको ध्यानमें रखकर ही उसका उल्लेख किया जाता है। परन्तु इन लोगोंकी तो गावमें बहुत ही छोटी सख्या होती है। आज गावोंमें इनके स्थापित हित हो गये हैं। उन्हें प्रोत्साहन देनेका अर्थ जनताके शोषणको प्रोत्साहन देना ही होगा। आजकी भाषामें अगर ग्राम-विकासके लिए प्रोत्साहनकी किसीको भी जरूरत हो तो वह गावमें बड़ा बहुमत रखनेवाले ग्राम-समुदायको ही है। आज हमारे गाव समृद्ध नहीं हैं; इसका कारण यह है कि प्रोत्साहनके अभावमें ग्राम-जनताकी सर्जनात्मक शक्तिका विकास नहीं हो पाया है। इस शक्तिके विकासके लिए सहानुभूति और सूझ दोनोंकी जरूरत है।

आज तो तथाकथित प्रोत्साहन देनेवाली वस्तुओं पर गावके भद्र लोगोंका ही एकाधिपत्य है। गावकी जनताका तो कोई भाव ही नहीं पूछता। सर्जनात्मक और सहकारी साहसके नये वातावरणमें भद्र लोगों और आम जनता दोनोंको सपूर्ण तथा समुचित प्रोत्साहन मिलेगा। गावके सभी मनुष्योंकी सर्जनात्मक शक्तिका विकास करके गावोंकी अर्थ-

रचनाको विस्तृत बनानेके लिए कार्य किया जाय, तो उसमें गावके भद्र लोगोंका उन्नत स्वार्थ सिद्ध होगा तथा ग्राम-जनताको अपनी शक्तिके पूरे पूरे उपयोगके लिए आवश्यक प्रोत्साहन और अवसर प्राप्त होंगे।

५ सेवा-सहकारी समितिया तथा सहकारी खेती

कुछ लोगोंके मनमें यह शका है कि मानव-स्वभाव सहकारी पद्धतिसे उत्पादन करने जितना ऊचा उठ सकेगा या नहीं? वे लोग इतना स्वीकार करते हैं कि मानवका स्वभाव ज्यादासे ज्यादा सेवा-सहकारी समितिकी बात स्वीकार करने जितना तो साहसी बनेगा, परन्तु सहकारी खेतीकी बात वह कभी स्वीकार नही करेगा। परन्तु अन्तमें यह मानव-स्वभाव कैसा है? क्या वह मूलसे ही स्वार्थी और असहकारी है? या उसकी दिखाई पडनेवाली सकुचितता जीवनमें विकास और उन्नतिके घटते जानेवाले अवसरोके कारण उत्पन्न हुई है? यदि ऐसा ही हो — और हमारे गावो पर यही बात लागू होती है — तो ऊपरसे दिखाई देनेवाली सकुचितताका मूल मानव-स्वभावमें नही परन्तु परिस्थितियोमें है। सामान्य मनुष्य परिस्थितियोका प्राणी होनेसे यह परिस्थितियोंके अनुसार व्यवहार करता है। यदि परिस्थितिया अनुकूल हो तो वह भी अनुकूलतासे ही व्यवहार करता है। यदि परिस्थितियोमें सुधार कर दिया जाय, तो मनुष्य अधिकाधिक अनुकूल बन सकता है। मनुष्यके नैतिक विकासके बारेमें शका रखना और फिर भी उसके आर्थिक विकासकी आशा रखना मनुष्यके उस व्यक्तित्वको न समझनेके बराबर है, जो अखड और अविभाज्य है और जिसका अलग अलग टुकडोंमें विकास नही होता। यह विकास तो सपूर्ण और समग्र है और उसके आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा नैतिक सारे पहलू एकसाथ विकास करते हैं।

किस प्रकारका सगठन गावोके लिए ठीक होगा, इसका आधार इस बात पर रहेगा कि हमें किस प्रकारके प्रश्न हल करने हैं अथवा कौनसे उद्देश्य सिद्ध करने हैं। यदि हमे गावोके कर्ज जैसे प्रश्न हल करने हों और ग्राम-अर्थरचनाकी छिन्न-भिन्न स्थितिमें से उत्पन्न होने-

वाले प्रश्नोंको वैसे ही अछूते रहने देना हो, तो सेवा-सहकारी समिति-योंसे हमारा काम चल सकता है। परन्तु यदि नई समाज-रचना खड़ी करनेका हमारा ध्येय हो, जिसमें हमारी संस्कृतिके मूल्योंकी भी रक्षा हो सके और वैज्ञानिक प्रगतिके रूपमें नई नई बातें भी शामिल की जा सकें, तो उसके लिए खेतीका नये प्रकारका संगठन अनिवार्य होगा। इसका आरंभ सेवा-सहकारी समितिसे किया जा सकता है, परन्तु ग्राम-अर्थतंत्रके बुनियादी प्रश्नोंके हलकी दृष्टिसे सेवा-सहकारी समिति अधूरा कदम होगा। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें सेवा-सहकारी समिति हल नहीं कर सकती और दूसरे कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें वह हल तो कर सकती है परन्तु स्थायी रूपमें नहीं। मानव-शक्ति और प्राणि-शक्तिका विचारपूर्ण उपयोग करना, ग्राम-अर्थतंत्रकी पद्धतिके आधार पर रचना करना, गांवके मवेशियोंका श्रम करना, विकासके अवसर बढ़ाना, गांवमें शहरों जैसी सुविधायें और सेवायें खड़ी करना — ये सब ऐसे प्रश्न हैं, जो केवल सेवा-सहकारी समितिसे हल नहीं हो सकते। सेवा-सहकारी समिति या सहकारी खेतीका प्रश्न ऐसा है, जिस पर ग्राम-विकासके लक्ष्योंकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। नीचे सेवा-सहकारी समितिकी मर्यादाओं तथा सहकारी खेतीके स्पष्ट लाभोंकी चर्चा संक्षेपमें की जाती है।

सामाजिक सेवाओंकी व्यवस्था

कार्यक्षेत्रका विस्तार जब खास तौर पर कुछ गांवों तक पहुंचा हो, तब सदस्योंकी ऐच्छिक आर्थिक सहायताके बल पर स्वास्थ्य आदिकी सेवाओंकी स्थायी व्यवस्था कर सके ऐसी सेवा-सहकारी समिति खड़ी नहीं की जा सकती।

(१) ऐसी योजनाओंके लिए सहकारी खेती-समितियोंके द्वारा सफलतापूर्वक धन प्राप्त किया जा सकता है। इजराइलके अनुभवोंसे यह पता चला है कि सहकारी खेती-समितियोंमें ऐसी सेवाओंकी व्यवस्था अच्छी तरह की जा सकी है। यह व्यवस्था सेवा-सहकारी समितियों द्वारा नहीं की जा सकी।

(२) सेवा-सहकारी समितियोंमें उनके सदस्य ही इन सेवाओंका लाभ उठा सकते है। सहकारी खेती-मंडलियोंमें स्वास्थ्य, शिक्षा वगैरा सामाजिक सेवाओंके लिए अलग रकम रखी जाती है, इसलिए गरीबसे गरीब आदमी भी उनका लाभ उठा सकता है। इस प्रकार सहकारी खेती-समिति सेवा-सहकारी समितिके लाभोंको व्यापक बनाती है।

सहकारी खेतीके स्पष्ट लाभ

संक्षेपमें लाभ इस प्रकार है :

१. साधन-संपत्तिका संपूर्ण उपयोग

(१) अधिक पूंजी लगानेकी संभावना।

(२) मानव-शक्तिके साथ दूसरी बेकार पड़ी हुई साधन-सम्पत्तिका पूर्ण उपयोग।

(३) सम्पत्ति तथा साधनोंकी किफायतशारी और इस कारणसे बाहरके पैसे लानेकी अधिक शक्ति।

(४) वैयक्तिक किसानके बजाय सहकारी खेती-समितिसे कर्ज वसूल करना आसान होगा। इससे पैसे उधार लेनेकी शक्ति बढ़ेगी।

(५) फसलोंकी योजना बनाई जा सकती है, जिससे जमीनका ज्यादा अच्छा उपयोग हो सकता है।

(६) जमीनको समतल बनाना, पाल बांधना, सिंचाईकी व्यवस्था करना — आदि जमीन-सुधारके कदम अच्छी तरह उठाये जा सकते हैं।

(७) सहकारी खेतीसे पशु-पालनका विकास सफलतापूर्वक किया जा सकता है और जमीन परसे पशुओंका बोझ घटाया जा सकता है। सहकारी खेतीसे जमीनके छोटे छोटे टुकड़ोंकी समस्या भी हल की जा सकती है। जमीनके टुकड़ोंको एकसाथ जोड़ देनेसे उत्पादन भी बढ़ेगा।

(८) सहकारी खेती छिपी हुई बेकारीको प्रकाशमें लाती है तथा अतिरिक्त मानव-शक्तिको मुक्त करती है, जिसे खेतीसे बाहरके क्षेत्रोंमें उत्पादक कार्योंमें लगाया जा सकता है। इस प्रकार सहकारी खेतीसे

केवल खेतीका ही उत्पादन नही बढता, परन्तु गावका कुल उत्पादन भी बढता है।

(९) इसमें थोकबद खरीद-बिक्रीकी अधिक सभावना रहती है। और इस कारणसे खेतीके उत्पादन तथा औद्योगिक उत्पादनके भावोंके बीच समानता स्थापित की जा सकती है।

(१०) फसलके बिगड जानेसे जो घाटा होता है, वह सब सदस्योंमें समान रूपसे बट जाता है। किसी एक सदस्यको अकेले ही घाटा नही उठाना पडता। इस तरह मानो सहकारी खेती फसलो तथा पशुओंके बीमेका प्रबन्ध करती है।

२. रोजी और उद्योग-धंधोंकी रचना

(१) केवल सहकारी खेतीमें ही ग्राम-अर्थतंत्रको विविधतापूर्ण बनाना तथा अनेक उद्योग-धधोकी रचना करना सभव है।

(२) साधनोंके समुचित और सोच-विचार कर किये जानेवाले उपयोग द्वारा उत्पादनके अधिक कार्यक्रम हाथमें लिये जा सकते हैं। इसके फलस्वरूप रोजीके अवसर बढ सकते हैं और शक्तिशाली नौजवानोंके लिए विशिष्ट कार्योंकी व्यवस्था की जा सकती है।

(३) सहकारी खेतीके फलस्वरूप ही गावके लोग अपने समयका उचित उपयोग कर सकते है।

३. सामाजिक सुमेल

(१) सयुक्त खेतीसे कोर्ट-कचहरीके मुकदमे कम होंगे और सामाजिक सवादिता तथा सुमेल बढेगा। आज गावके झगडो तथा सघर्षोंके कारण निम्नलिखित हैं

(क) सामाजिक असमानता।
(ख) गुणोंकी उपेक्षा।
(ग) आर्थिक असमानता तथा सम्पत्तिकी प्रतिष्ठा।
(घ) निश्चित रोजीके प्रबधका अभाव।
(ङ) सामाजिक और आर्थिक सेवाओंका अभाव।
(च) जमीन-सम्बन्धी झगडे।

सहकारी खेती इनमें से कुछ कारण दूर करनेमें मदद कर सकती है और गावके लोगोमें सुमेलकी हवा फैला सकती है।

(२) सेवा-सहकारी समितियोमें व्यक्तिगत हितो पर ही भार दिया जाता है। सहकारी खेतीमें वर्गीय हितोके अधिक अच्छे सुमेलकी सभावना है। सम्पत्ति या मिल्कियतके सम्बन्ध शायद बदले न जा सकें, परन्तु छोटे किसान और भूमिहीन किसान सहकारी समितिमें जुड़े तो उनके भीतर आत्म-विश्वास पैदा होगा, क्योंकि उन्हें भी बड़े किसानोके जितना ही मतदानका अधिकार मिलेगा।

(३) बेजमीन किसान तथा जमीन-मालिक दोनोकी आयमें वृद्धि होनेसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

(४) सहकारी खेतीसे मिल्कियतके बदले गुणोको प्रतिष्ठा मिलेगी। योग्यता हो तो छोटे किसान या खेत-मजदूर भी सहकारी समितिका प्रबन्ध चला सकते हैं।

(५) सहकारी खेती-समितिमें अत्योदय तथा सामाजिक सुरक्षितताके खर्चकी व्यवस्था की जा सकती है।

(६) सहकारी खेती ग्राम-अर्थतत्रका विकास करके दोनों वर्गोंकी शक्तिका उपयोग कर सकती है। इसके फलस्वरूप गावकी तगदिली और मनमुटाव घटेंगे।

३

कार्यक्षम औजार

स्थित्यानूल्यमयत्नलभ्यमशन धात्रामरुत्कल्पितम् ।
व्यालाना, पशवस्तृणाकुरभुज सृष्टा स्थलीशायिन ॥
समारार्णवलघनक्षमधिया वृत्ति कृता सा नृणाम् ।
यामन्वेषयता प्रयान्ति सतत सर्वे समाप्ति गुणा ॥

भगवानने सापके लिए ऐसा आहार निश्चित किया है, जो आसानीसे मिल सके और उस आहारके लिए उसे हिंसा न करनी पड़े। पशुओंको भगवानने घास-चारा खानेवाले बना दिया है। पशु जमीन पर सोनेके आदी होते हैं। दोनोंके लिए भगवानने ऐसा सरल जीवन बना दिया है। यह जीवन उनकी वृद्धिके अनुरूप है। परन्तु मनुष्यके लिए, जिसमें जीवन-सागर पार करनेकी शक्ति है भगवानने भोजन प्राप्त करना इतना कठिन बना दिया है कि उसके समस्त गुण भोजन प्राप्त करनेमें समाप्त हो जाते हैं।

मनुष्य युगोंसे अपने अस्तित्वके संघर्षको हलका बनानेका प्रयत्न करता हो आया है। अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेमें ही उसकी सारी शक्ति खर्च न हो जाय, इसके लिए वह यथासंभव अधिकसे अधिक मार्गों तथा साधनोंकी शोध करता ही रहा है। उसने खेतीके विज्ञानका विकास करके अधिक अनाज उत्पन्न करनेमें कुदरतकी सहायता की है। इसी प्रकार उसने अपने हितके लिए पशु-पालनके उद्योगका भी विकास किया है। उसने संग्रहकी पद्धति खोज निकाली, जिससे अधिक उत्पादनका उपयोग अनाजकी तंगीके समय किया जा सके। उसने स्थानीय तंगीको दूर करनेके लिए अतिरिक्त उत्पादनकी अदला-बदलीकी व्यवस्था भी कर दी है। सरदी-गरमी-बरसातसे अपना रक्षण करनेके लिए उसने कपड़ा बनाने तथा मकान बांधनेकी कला सीख ली है। उसने स्वास्थ्यकी रक्षा तथा रोगोंसे अपनेको बचानेके लिए चिकित्सा-

शास्त्रका विकास किया है। बडी मेहनतसे बचनेके लिए उसने तरह तरहके औजारों और साधनोंकी खोज की है। संक्षेपमें, मनुष्यने जीवनके सारे पहलुओंका विज्ञान विकसित करनेका तथा अपने हितके लिए उसका उपयोग करनेका प्रयास किया है। अब अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेके लिए उसे अपनी समूची शक्ति खर्च कर डालनेकी जरूरत नहीं रह गई है। अब वह जीवनकी उच्च सिद्धियोंके लिए अपना समय और शक्ति बचा सकता है। युगोंके इतिहासका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि औजारों तथा कार्य-पद्धतिका सुधार मानव-संस्कृतिके विकासकी एक निरन्तर प्रक्रिया बन गई है। सर्वप्रथम काष्ठयुग आया, फिर प्रस्तर-युग, फिर धातुयुग, फिर विद्युत-युग और अब अणुयुग आया है। प्रत्येक युगमें मनुष्यने अपने औजारों तथा कार्य-पद्धतियोंमें सुधार किया है, जिससे उसका बोझ हलका हुआ है। इसी तरह, वह कामके लिए काम नहीं, परन्तु शक्तिके विकासके लिए कामकी परिस्थिति उत्पन्न कर सका है। विज्ञानका विकास होनेसे आज केवल शारीरिक जरूरतें पूरी करनेके लिए ही जीवनको खपा डालनेका भय नहीं रहा है। मनुष्यकी सांस्कृतिक उन्नतिके लिए विज्ञान उसे हर प्रकारकी मदद कर सकता है।

विज्ञान दुधारी तलवार है

विज्ञानसे मानव-जातिको लाभ हुआ है, फिर भी विज्ञान दुधारी तलवार साबित हुआ है। विज्ञानका असावधानीसे उपयोग करनेके कारण मानव-जातिको नुकसान पहुंचा है। जब तक 'सबसे योग्य व्यक्तिको ही जीनेका अधिकार है' वाला सिद्धान्त अस्तित्वमें रहेगा, तब तक विज्ञानका उपयोग विनाशक साधनके रूपमें ही होगा और अधिकाधिक विनाशक साधनोंका जन्म होगा। सच पूछा जाय तो विज्ञानका विकास होनेसे तथा उसके फलस्वरूप मनुष्यका जीवन-संघर्ष हलका हो जानेसे जीवनकी प्रतिस्पर्धा घटनी चाहिये और धीरे धीरे उसका अन्त होना चाहिये। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि जीवनकी जरूरतोंका स्थान धनलोभ, दंभ और सत्तालोभने ले लिया है। इसलिए

जो लोग बलवान हैं वे विज्ञानका उपयोग अपनी जरूरतें पूरी करनेके लिए नही करते, परन्तु दूसरोका शोषण करके अपने पास धनका सग्रह बढानेके लिए करते है। इसीलिए उन्हें निर्बलोका शोषण करना पडता है। इस तरह विज्ञान और यत्रोने कुदरतके खिलाफ चलनेवाले मनुष्यके सघर्षको वर्ग-सघर्षमें बदल डाला है। यह सघर्ष आर्थिक और राजनीतिक सत्ताके केन्द्रीकरणमें सहायक होता है, इसलिए समाजके सामने स्थायी रूपसे वर्ग-सघर्षकी समस्या खडी हो गई है।

विज्ञानकी प्रगतिके परिणाम सदा स्वागतके योग्य होने चाहिये। परन्तु अतमें ये परिणाम साध्यके लिए साधनका काम करनेवाले हैं; वे स्वय साध्य नही हैं। अन्य साधनोकी तरह उनका भी भले या बुरे हेतुके लिए उपयोग हो सकता है।

विद्या विवादाय धन मदाय,
शक्ति परेषा परपीडनाय।
खलस्य साधो. विपरीतमेतत्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

दुष्ट मनुष्य अपने ज्ञानका उपयोग वाक्युद्धके लिए, अपनी सपत्तिका उपयोग अभिमानका पोषण करनेके लिए तथा अपनी वीरताका उपयोग दूसरोके शोषणके लिए करता है। बुद्धिमान और भला मनुष्य इससे उलटा ही करता है। वह अपने ज्ञानका प्रसार करता है, अपनी सपत्तिका उपयोग दानमें करता है और अपनी वीरताका उपयोग दूसरोकी रक्षाके लिए करता है।

बेशक, साधनोका बहुत बडा महत्व है। परन्तु जिस उद्देश्यके लिए उनका उपयोग किया जाता है उसका महत्व साधनोसे भी ज्यादा है। यत्रोका अधिकतर दुरुपयोग होनेके कारण उनके खिलाफ उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया समाजमें उठ खडी हुई है। इसी तरह यत्रोके फलस्वरूप पूजीवादकी प्रतिक्रिया समाजवादके रूपमें हमारे सामने आई। आरभमें यत्रोके उपयोगका शोषणकी दृष्टिसे विरोध किया जाता था। अब उनके उपयोगका विरोध अधिक प्रौढ और परिपक्व दृष्टिसे किया

जाता है। यंत्रोंके कारण आर्थिक और राजनीतिक सत्ताका केन्द्रीकरण होता है तथा ऐसा जटिल समाज उत्पन्न होता है, जिसमें व्यक्तियोंका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। आज इसी दृष्टिसे यंत्रोंका विरोध किया जाता है। आजकलकी इन प्रतिक्रियाओंके फलस्वरूप विकेन्द्रीकरणका आन्दोलन खड़ा हुआ है। समाजवाद तथा विकेन्द्रीकरण दोनों मानव-सेवाके लिए विज्ञानका उपयोग करना चाहते हैं; परन्तु साथ ही उसके दुरुपयोगसे मानव-जातिको बचाना चाहते हैं। इस मामलेमें विकेन्द्रीकरण समाजवादसे एक कदम आगे है। उसका ध्येय विकेन्द्रित अर्थ-रचनाके अनुरूप छोटे छोटे यंत्र पैदा करना है। अब विकेन्द्रीकरणके लिए समय पक गया है।

मनुष्यको यंत्रोंका स्वामी बनना चाहिये

दुधारी तलवार जैसे विज्ञानके उपयोगके बारेमें गांधीजीका सिद्धान्त यह था 'अगर यंत्रोंके दुरुपयोगसे बचना हो तो मनुष्यको यंत्रका स्वामी बनना चाहिये।' इस सिद्धान्तका अर्थ हम समझ लें।

१. यंत्रसे मानवका श्रम कम होना चाहिये

गांधीजी हर बार सिंगरकी सीनेकी मशीनका प्रसिद्ध उदाहरण देते थे। मि० सिंगर अपनी पत्नीके प्रेमके कारण तथा उसकी मेहनत कम करनेकी आतुरताके कारण इस मशीनकी शोध करनेके लिए ललचाये थे। दूसरा उदाहरण साइकलका है। उससे भी मनुष्यका श्रम हलका होता है। ऐसे अनेक उदाहरण यहां दिये जा सकते हैं। खेतोंमें, कारखानोंमें और घरोंमें ऐसे यंत्र दाखिल किये जा सकते हैं, जिनसे मनुष्यका श्रम कम हो। ऐसे साधनोंका उपयोग उत्पादक कार्य-क्षमता बढ़ानेके लिए भी किया जा सकता है, ताकि उसे जीवन-वेतन मिल सके। उत्पादनकी **गुणवत्ता** बढ़ानेके लिए भी कार्यक्षम साधनोंका उपयोग करनेसे लाभ होगा। स्वास्थ्यके खयालसे ऊन और रुई पींजनेमें कार्यक्षम यंत्रोंका उपयोग करना चाहिये। साधनोंमें सुधार करनेके लिए ये सब उचित कारण हैं।

२. यंत्रका कानून

कारीगरको जीवन-वेतन मिल सके तथा वह अपने समयका उचित उपयोग कर सके, इसके लिए उसकी उत्पादन-क्षमता बढ़ानी चाहिये। इस प्रकार कार्य-क्षमता मनुष्यके सुख और संतोषका लक्ष्य सिद्ध करनेका साधन है। परन्तु यदि साध्यकी अपेक्षा सुधरे हुए साधनका महत्त्व बढ़ जाय, तो जिस हेतुके लिए साधनका उपयोग किया जाता है वह हेतु ही नष्ट हो जाय। नतीजा यह होगा कि यंत्र मनुष्यका स्वामी बन जायगा। यह बात एक पुरानी कथामें अच्छी तरह दिखाई गई है। एक आदमी अमर्याद भोग-विलास भोगनेकी इच्छासे एक योगीके पास गया। योगीसे उसने ऐसा वरदान मांगा जिससे उसकी यह साध पूरी हो। इसके लिए योगीने उसे एक शैतान दिया और यह चेतावनी दी कि तुम्हें शैतानको सतत काम देना पड़ेगा, नहीं तो शैतान तुम्हें ही खा जायगा। इस आदमीको पूरा भरोसा था कि वह शैतानकी शक्तिका पूरा पूरा उपयोग कर सकेगा। योगीके आशीर्वाद लेकर वह शैतानके साथ अपने घर गया और उसके मारफत अपनी इच्छायें पूरी करने लगा। शैतानने तुरन्त ही उसकी इच्छित वस्तुएं उसके सामने रखना शुरू कर दिया। बादमें ऐसा समय आया जब वह आदमी आगे कुछ विचार ही नहीं कर पाया। उसे सूझता ही नहीं था कि अब क्या वस्तुएं शैतानसे मंगाई जायं। शैतानने उसके नाकों दम कर दिया। वह बड़ा घबराया और फिर योगीके पास भागा भागा गया। योगीसे अपना जीवन बचानेकी प्रार्थना उसने की। योगीने उसे दो मार्ग बताये : या तो तुम शैतानको वापिस भेज दो या एक खम्भा गाड़कर उस पर शैतानको चढ़ने-उतरनेकी आज्ञा दो। किसी भी प्रकार तुम शैतानकी सेवासे मुक्त हो जाओ।

बड़े पैमानेके यंत्रोद्योग उत्पादनकी कार्य-क्षमता तो बढ़ाते हैं, परन्तु बहुत बार वे शैतान जैसे बन जाते हैं। उन पर मनुष्यका अंकुश रहनेके बजाय वे मनुष्य पर अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। ऐसा होने पर उत्पादनकी शक्तिका आधार मनुष्य पर नहीं रहता। उसकी गति पर नियंत्रण खतम हो जाता है। जमीन, साधन, व्यवस्था

तथा प्रचारका खर्च पहलेसे ही तय हो चुका होता है। अब उत्पादन इतनी मात्रामें होना चाहिये कि ये सब खर्च पूरे हो सकें। यत्रका आकार तय करनेवाली दूसरी बात यह है कि यदि कार्यक्षम रूपमें किफायतशारीसे उत्पादन करना हो, तो यत्रकी शक्तिका पूरा उपयोग होना चाहिये। इस प्रकार उत्पादनकी मात्रा भी पहलेसे ही तय कर ली जाती है। इस प्रकारका उत्पादन वास्तविक जरूरतें पूरी करनेके लिए नहीं किया जाता, परन्तु केवल उत्पादनके लिए ही किया जाता है। ऐसी स्थितिमें उत्पादन जरूरतोंका अनुसरण नहीं करता, परन्तु जरूरतें उत्पादनका अनुसरण करती हैं। ये जरूरतें तैयार माल बाजारमें घुसा कर खडी करनी पडती हैं। बडे पैमानेके उद्योगोंकी इस प्रक्रियाके कारण तथा बाजारके सघर्षोंके परिणामस्वरूप दुनियामें आर्थिक साम्राज्य-शाहीका जन्म हुआ है।

यदि मनुष्यको यत्रका स्वामी बनना हो तो निश्चित क्षेत्रके लोगोंकी वास्तविक जरूरतें पूरी करनेके लिए उत्पादन करनेकी व्यवस्था होनी चाहिये। यदि नई जरूरतें पैदा हों तो उनके बारेमें वैज्ञानिक जीवन-स्तरकी दृष्टिसे विचार होना चाहिये, न कि गैर-जरूरी चीजें ग्राहकों पर लादनेके लिए। इस प्रकारका उत्पादन क्षेत्रीय या प्रादेशिक आयोजनके आधार पर होना चाहिये। उस क्षेत्रकी जरूरतोंका अध्ययन किया जाना चाहिये। किन्तु केवल भौतिक जरूरतोंके आधार पर ही उत्पादनका प्रकार तय नहीं होना चाहिये। भौतिक उत्पादन केवल बाहरी मूल्य प्रदान करता है। व्यक्तित्वके विकासका अवसर मिलना यह मनुष्यकी अधिक बडी जरूरत है। ऐसे अवसर प्राप्त करनेका मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है। जिस उत्पादनसे मनुष्यकी केवल भौतिक जरूरतें पूरी हों, लेकिन व्यक्तित्वके विकासके अवसर उससे छीन लिये जाय, वह उत्पादन मनुष्यको सबसे ज्यादा हानि पहुचाता है। इन कारणोंसे जरूरतोंका विचार रोजीके अवसरोंकी दृष्टिसे भी किया जाना चाहिये। उत्पादनके साधनोंसे मनुष्यके व्यक्तित्वका विकास होना चाहिये तथा रोजीके अवसर बढने चाहिये।

३. सच्चे अतिरिक्त उत्पादनका विनिमय

क्षेत्रीय आयोजन कोई जड नीति नहीं है, परन्तु एक बुद्धियुक्त विचार है। उसमें क्षेत्रकी सम्पत्तिके पूर्ण उपयोग तथा पूर्ण विकासका और विभिन्न हितोंके बीच सतुलन स्थापित करनेकी दृष्टिसे उत्पादनकी व्यवस्था करनेका ध्येय सामने रखा जाता है। उसमें अर्थतंत्रके विकासके लिए यत्रका उपयोग करनेकी कसौटी हमारे हाथमें आती है। उसमें एक ओर क्षेत्रके कुल साधनोका अन्दाज निकाला जाता है और दूसरी ओर रोजी तथा उपभोगकी वस्तुओका अदाज निकाला जाता है। और इन दोनो बातोका मेल सधे इस दृष्टिसे उत्पादनके यत्रोंमें आवश्यक सुधार सुझाये जाते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय आयोजन अलग अलग क्षेत्रमें यत्रकी मर्यादा निश्चित करके उसके सुधारकी सभावना उत्पन्न करता है। इस सभावनाका सारा आधार उत्पादनको क्षेत्रकी जरूरतो तक ही मर्यादित बनाने पर रहता है। ऐसी मर्यादा रखना जरूरी है, क्योंकि वैसे ही दूसरे क्षेत्रोंके सामने उसे उदाहरण प्रस्तुत करता है। यदि एक क्षेत्र भौतिक शक्तिका उपयोग करके अधिक उत्पादन करे तो दूसरे क्षेत्र भी उसका अनुसरण करेंगे और इस तरह विभिन्न क्षेत्रोंके बीच अनुचित प्रतिस्पर्धा खडी हो जायगी। जब तक उत्पादनको किसी क्षेत्रकी जरूरतो तक मर्यादित रखा जायगा, तब तक मनुष्य यत्रका स्वामी रहेगा। यत्र जब मनुष्य पर सवार हो जाता है, तब सारी परिस्थिति बदल जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि एक क्षेत्रको दूसरे क्षेत्रके साथ कोई सबध ही नहीं रखना चाहिये। मूल प्रश्न तो उत्पादनकी पद्धति निश्चित करनेका है। क्षेत्रोंके बीच वस्तुओंका विनिमय तो होगा, परन्तु वह विनिमय जिस क्षेत्रने सचमुच अतिरिक्त माल पैदा किया है और जिस क्षेत्रमें सचमुच उस मालकी तगी है ऐसे दो क्षेत्रोंके बीच होना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें, विनिमय विवेकपूर्वक होना चाहिये। स्थानीय परिस्थितियोंमें आवश्यक हो ऐसी फसलें पैदा करनेके लिए उत्पादन-पद्धतिमें थोडा-बहुत फेरबदल करना पडेगा, परन्तु यदि ध्येय स्पष्ट हो तो इस सबधमें बहुत मामूली फेरबदल ही होंगे। यदि क्षेत्रके सब लोगोंको क्षेत्रीय आयोजनके उज्ज्वल भविष्यकी

कल्पना करा दी जाय, तो क्षेत्रीय आयोजनका अमल अधिक सफलता-पूर्वक हो सकता है।

४. समग्र दृष्टि

यदि मनुष्यको यंत्रका स्वामी रहना हो, तो यंत्रके चुनावमें तथा उसके उपयोगमें उसे समग्र दृष्टि अपनानी होगी। क्षेत्रकी जरूरतोंकी दृष्टिसे यन्त्रोंका चुनाव इस ढंगसे होना चाहिये कि उत्पादनकी कार्य-क्षमता और सब लोगोंको आत्माभिव्यक्तिके अवसरोंकी सुलभता — इन दोनोंमें सन्तुलन बना रहे। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादनकी कार्य-क्षमताका सुमेल अन्य सामाजिक मूल्योंके साथ बैठाना चाहिये। उदाहरणके लिए, खेतीकी अर्थ-रचना मजबूत बने तथा क्षेत्रमें सबको रोजी मिले, इस खयालसे किसी क्षेत्रमें शक्करका कारखाना खोलनेके बजाय खाडसारी बनाना शायद ज्यादा पसंद करने लायक माना जायगा। जिस तेल-मिलमें खलीमें तेलकी एक बूंद भी बाकी न रहती हो ऐसी तेल-मिल खोलनेसे खली पर निभनेवाले पशुओंको जरूरी पोषक खुराक नहीं मिलेगी। इसलिए पशुओं तथा खेतीकी दृष्टिसे मिलसे कम कार्यक्षम साधन तेलघानीका चुनाव करना होगा। घानीको पसंद करनेसे मनुष्य तथा पशु दोनोंके हित सुरक्षित रहेंगे। उक्त प्रकारकी मिलका चुनाव करनेसे मनुष्य इस संयुक्त हितका लक्ष्य भूल जाता है और कार्य-क्षमताका भूत उस पर सवार हो जाता है। हमारा सुझाव ऐसा नहीं है कि यन्त्रोंमें सुधार न किया जाय। स्थानीय परिस्थितियोंको देखकर यन्त्रोंमें सुधार किया ही जाना चाहिये। हमारा आशय केवल इतना ही है कि जब तक सारी बातोंका विचार करके काम किया जाता है, तभी तक मनुष्य यंत्रका स्वामी रह सकता है। जिस क्षण यंत्र मनुष्य पर सवार हो जाता है और उसके लिए एकांगी दृष्टिसे सोचना या अधिक तेज उत्पादन करना अनिवार्य बना देता है, उसी क्षण परिस्थिति बिलकुल उलटी हो जाती है।

५. सामाजिक भावना

क्षेत्र-स्वावलम्बनकी मर्यादामें रहकर जहां कार्यक्षम यंत्रोंका उपयोग सहकारी पद्धतिसे किया जाता है, वहां भी उनके दुरुपयोगका भय तो रहता ही है। जिन सामाजिक नेताओंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थका त्याग करके उदात्त स्वार्थ सिद्ध किया है, यंत्रोंके उपयोगकी जिम्मेदारी निर्भयतापूर्वक केवल उनके ही हाथोंमें सौंपी जा सकती है। यंत्रके उपयोगके लिए जितनी विकसित बुद्धि आवश्यक है, उतना ही उदार हृदय भी आवश्यक है। दूसरे शब्दोंमें, उदार हृदयवाले नेताओंके अभावमें यंत्रोंका उपयोग करनेसे वही परिणाम आनेकी संभावना रहती है, जो उस घोड़ेको चाबुक मारनेसे आ सकता है जिस पर छोटा बच्चा सवार हो। छोटे बच्चेकी जो दशा हो सकती है वही दशा अविकसित हृदयवाले मनुष्यकी हो सकती है। दोनोंमें से एकमें भी अपने साधन पर नियंत्रण रखनेकी शक्ति नहीं होती। यंत्रोंके विकासके साथ मनुष्यकी भावनाका भी विकास होना चाहिये। केवल उदार और महान व्यक्ति ही यंत्रका उपयोग समाजके भलेके लिए कर सकता है। ऐसी उच्च भावनाके विकासके बिना केवल क्षेत्रीय आयोजन और सहकारी क्षेत्रकी रचना लोभी आदमियोंके व्यक्तिगत स्वार्थ तथा परिग्रह-वृत्ति पर नियंत्रण नहीं रख सकेंगे। परन्तु केवल शक्तिशाली व्यक्तियोंकी भावनाओंका विकास होना ही पर्याप्त नहीं है। संपूर्ण क्षेत्रके लोगोंको जाग्रत बनना होगा, ताकि वे लोभी आदमियोंकी महत्त्वाकांक्षाओं पर और उनके कार्यों पर निगरानी और आवश्यक अंकुश रख सकें। शुभ भावना और अच्छी समाज-व्यवस्था दोनों मिल जाती हैं तभी यंत्र किसीका शोषण नहीं होता और यंत्र मानवोंकी अहिंसक सेवा कर सकता है। इस विचारको विनोबाजीने नीचेके दो सूत्रोंमें शब्दबद्ध किया है

१. हिंसा + विज्ञान = सर्वनाश।
२. अहिंसा + विज्ञान = सर्वोदय।

विनोबाजीके कथनानुसार केवल अहिंसा पर रचा हुआ समाज ही इस विज्ञान-युगमें टिक सकता है। केवल अहिंसाको ही दिनोंदिन विकास करनेवाले विज्ञानका उपयोग करनेका अधिकार है।

६ आत्म-विकासका ध्येय

हम पहले ही प्रकरणमें देख चुके हैं कि अमर्यादित विलासका ध्येय मनुष्यके विकासको कैसे रोक देता है। ऐसे ध्येयसे यंत्र मनुष्यका स्वामी बन जाता है। यदि मनुष्य अपनी जरूरतोंको मर्यादित बना ले, तो वह यंत्र पर अंकुश रख सकता है। मनुष्यका समाजके प्रति भी कर्तव्य है और स्वयं अपने प्रति भी है। मनुष्यका केवल ऐसा सामाजिक प्राणी बनना ही काफी नहीं है जो किसीका शोषण न करे। मनुष्यके नाते उसे आदर्शोंकी और महानताकी साधना करनी चाहिये। इसलिए यंत्र पर सामाजिक नियंत्रण होना ही काफी नहीं माना जायगा। परन्तु व्यक्तिके उच्च आदर्शोंकी दृष्टिसे भी यंत्र पर नियंत्रण रहना आवश्यक है। 'सादा जीवन और उच्च विचार' की कला हस्तगत करनेसे मनुष्यका विकास होता है। भोग-विलासमें रचेपचे रहनेसे नहीं, किन्तु स्वनियंत्रित उपभोगसे यह कला हस्तगत की जा सकती है। यह कला सिद्ध होनेसे ही मनुष्यका श्रम हलका करनेके लिए यंत्रकी सेवा ली जा सकती है।

इस प्रकार यंत्रकी मददसे मनुष्यका जीवन-संघर्ष कम होना चाहिये। उसका परिणाम वर्ग-संघर्षमें नहीं आना चाहिये। अथवा सारे मानव भौतिक जीवनके शिकार नहीं बनने चाहिये।

विकासशील अर्थ-रचना

१ यथार्थिक जीवन-स्तरका विचार

जीवन-स्तरका विचार अर्वाचीन है। यह विचार यंत्रोंके विकासके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। यंत्रोंके विकाससे मनुष्यकी भौतिक सुविधायें [illegible]। बहुत समय तक ऊंचे जीवन-स्तरको जीवनके केवल भौतिक [illegible] साथ [illegible] जाता रहा। अर्थात् उच्च जीवन-स्तरका [illegible] और अधिक [illegible] किया जाता था। जीवन-स्तरकी [illegible] उसमें स्पष्टता भी आई। संस्कृतिकी [illegible]। अब ऊंचे जीवन-स्तरका [illegible] भौतिक स्तरसे न [illegible] ऊपर मानसिक और

आध्यात्मिक स्तरके साथ जोडा गया। अनुभवमें यह पता चला कि अगर मनुष्यकी संपूर्ण शक्ति जीवनका भौतिक स्तर ऊंचा उठानेमें ही खर्च हो जाय, तो मानसिक और आध्यात्मिक स्तरको ऊंचा उठानेके लिए उसके पास कोई शक्ति बाकी नहीं रहती। इसलिए भौतिक स्तरको ऐसे एक साधनके रूपमें मानना चाहिये, जो मनुष्यकी मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिके लिए उसकी शक्तिको बचाता है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' — शरीर धर्म अर्थात् मनुष्यके व्यक्तित्वके विकासका प्रथम साधन है। इस विचारमें से वैज्ञानिक जीवन-स्तरका विचार विकसित हुआ है।

जिन देशोंका विकास नहीं हुआ है, उन देशोंमें कुदरतके साथ चलनेवाला संघर्ष अभी खतम नहीं हुआ है। ऐसे कितने ही अर्ध-विकसित देश हैं जहां इस दिशामें कुछ अंश तक सफलता मिली है। परन्तु अभी उन्हें जीवनके उच्चतर स्तरोंका विकास साधना बाकी है। जिन देशोंमें जीवनकी जरूरतें बढ़ती हैं वहां रोजीके अवसर भी बढ़ते हैं। इससे उस देशके विकासकी कल्पना की जा सकती है। जिन देशोंमें विकास नहीं होता उन देशोंमें रोजीके अवसर बहुत ही कम होते हैं। अर्ध-विकसित देशोंमें मुख्यतः लोगोंकी बुनियादी जरूरतें पूरी करनेके लिए रोजीके अवसर पैदा होते हैं। जिन देशोंमें जीवनके उच्चतर स्तरोंका भी विकास हो गया है, वहां अधिक मात्रामें और उच्च प्रकारके रोजीके अवसर खड़े होते हैं।

रोजीके अवसरोंकी संख्या और उनकी गुणवत्ता समाजकी जरूरतों पर आधार रखती है। संतुलित आहारकी जरूरतें पैदा होने पर सघन खेतीके अवसर पैदा होते हैं। समाजकी संतुलित जरूरतोंके फलस्वरूप समाजमें धंधोंकी वृद्धियुक्त रचना जन्म लेती है। और, मनुष्यके संतुलित विकासका प्रतिबिम्ब काम-धंधों और सामाजिक सेवाओं पर पड़ता है। प्रत्येक क्षेत्रमें दोनों बाजुओंका — जरूरतों और रोजीका मेल मिलना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि रोजीके अवसर बढ़ने न हों, तो जीवनका स्तर ऊंचा उठाकर वे अवसर बढ़ाने चाहिये। अतः दोनों बाजुओंका मेल बैठानेके लिए दोनोंका अभ्यास करना चाहिये।

जरूरतोंके पक्षमें क्या कमी रहती है, यह जाननेके लिए मनुष्यकी भौतिक तथा आध्यात्मिक सुविधाएं बढ़ानेवाले वैज्ञानिक जीवन-स्तरकी दृष्टिसे अध्ययन होना चाहिये। ऐसे अध्ययनसे इस बातकी कल्पना होगी कि रोजीके अवसर कितने बढ़ाये जाने चाहिये।

हमारे गावोंके लिए यदि तात्कालिक कार्यक्रम बनाने हों, तो नीचेका जीवन-स्तर अपनाया जा सकता है। वर्तमान स्थिति तथा सूचित जीवन-स्तरके बीच रहनेवाले अन्तरका अध्ययन होना चाहिये और इस अन्तरको घटानेके कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहिये।

क्रम	ब्योरा	पांच व्यक्तियोंके परिवारकी दैनिक जरूरतें	अनुमानित वार्षिक खर्च
	खुराक	औंस	रुपये
(क)	अनाज	८०	३००
	दालें	२०	५०
	दूध	६०	१८०
	शाक-भाजी	४०	२००
	तेल-घी	८	२५
	फल	२०	१००
	शक्कर-गुड़	२०	२०
	मसाला	—	१००
(ख)	कपड़े	—	२००
(ग)	स्वास्थ्य	—	२५
(घ)	मकान	—	१७५
(ङ)	बीमा	—	५०
(च)	शिक्षा	—	५०
(छ)	आनंद-प्रमोद	—	१००
	कुल	—	१८००

२. खपत और उत्पादनको प्रोत्साहन देना

अभी तुरन्त तो लोगोंकी सच्ची जरूरतें पूरी करनेके लिए उत्पादनके कार्यक्रम बनाये जाने चाहिये। परन्तु लम्बी अवधिके आयोजनकी दृष्टिसे भी इस प्रश्न पर सोचा जाना चाहिये। केवल दैनिक जरूरतें पूरी करनेका ही ध्यान रखनेसे अर्थतन्त्रके स्थगित हो जानेकी संभावना है। स्थिर अर्थतन्त्रको गतिशील बनाना हो तो उसका विचार नई जरूरतोंके संदर्भमें होना चाहिये। नीचे इस बातकी सूची दी गई है कि हमारे गांवोंमें दैनिक जरूरतें कितनी छूटती हैं तथा नई जरूरतें कौन कौनसी पैदा की जानी चाहिये।

क्रम ब्योरा	छूटती जरूरतें	नई जरूरतें
(क) अनाज	दूध शाक-भाजी फल	फल-संग्रह
(ख) कपड़े	जूते गद्दे, रजाई छाता साबुन और सिरका तेल	गरम कपड़े कलोदेवाले कपड़े परदे
(ग) स्वास्थ्य	दवायें	सुविधायें
(घ) मकान	पक्के मकान	पानीके निकासकी व्यवस्था चटाई फर्नीचर कचरेका डिब्बा कमरोंको ठंडा रखनेके साधन गैसप्लान्ट
(ङ) सवारी		रास्ते सायकल
(च) बीमा		जीवनका पशुओंका फसलोंका

(छ) शिक्षा	अक्षर-ज्ञानका प्रचार स्टेशनरी तथा कागज	
(ज) आनंद-प्रमोद	खेलकूद (घरमें और घरके बाहर)	रम्यस्थान, फूलबाग, संगीत, रेडियो, चित्र, खिलौने

३. संपूर्ण रोजीका प्रश्न

प्रत्येक अर्थतंत्रमें ही उसके विकासकी संभावनाकी व्यवस्था होनी चाहिये। किसी भी समय वह स्थगित नहीं होना चाहिये। किसी भी परिस्थितिमें वह निचले स्तर पर स्थिर नहीं होना चाहिये। विशेषतः दिनोदिन अधिक विकसित होनेवाले विज्ञानके इस जमानेमें, जब नई प्रवृत्तियां तथा मनुष्यके लिए नई सेवाओंके क्षेत्र निरन्तर खुलते रहते हैं, ऐसी स्थगितता अनिवार्य है, यह तो केवल विचारहीन लोग ही स्वीकार कर सकते हैं। विज्ञानके नये आविष्कारोंकी वजहसे रोजीके नये अवसर उत्पन्न होते ही रहते हैं। यह ऐसी परिस्थिति है जिसमें मनुष्यको स्थिर अर्थ-रचनाकी दृष्टिसे सोचते हुए अर्थतंत्रके विस्तारकी संभावनाओंकी कदर करनी होगी। यदि इस तरह इस विषय पर फिरसे विचार हो, तो रोजीका प्रश्न नई संभावनाएं पैदा करेगा। इसमें नया संतुलन बनाये रखकर कार्यक्षम औजारोंको अपनाना संभव होगा। हर जगह यंत्रोंकी वजहसे इतनी ज्यादा कठिनाइयां खड़ी हो गई है कि अब उनके बारेमें लोगोंके मनमें भय पैदा हो गया है। ये कठिनाइयां जितनी यंत्रोंके सुधारकी संभावनाके अभावमें बाधक बनी, उससे ज्यादा आयोजनके अभावके कारण बाधक बनी। यंत्र-सुधारका सीधा परिणाम बेकारीके रूपमें आया है। ऐसा होनेका कारण इतना ही है कि यंत्र-सुधारका यह काम किसी प्रकारके आयोजन तथा किसी क्रमके बिना हुआ और बेकार बने हुए आदमियोंको उनके नसीब पर छोड़ दिया गया। उन्हें दूसरे धंधोंमें लगानेकी कोई योजना नहीं की गई। इस प्रकारकी अव्यवस्थित बेकारीमें तथा आयोजन अथवा हेतुपूर्वक उत्पन्न की जानेवाली बेकारीमें भेद है। हेतुपूर्वक उत्पन्न की जानेवाली बेकारीमें यंत्र-सुधारके कारण बेकार बननेवालोंको एक धंधेसे हटाकर दूसरे धंधोंमें लगा दिया जाता है। इस प्रकारके स्थलान्तर पर क्षेत्रीय

कामका उचित समय-पत्रक

रोजीका दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है कार्यकरोंके लिए उचित समय-पत्रककी व्यवस्था करना। रोजीकी सच्ची कीमत मनुष्यके व्यक्तित्वके विकासमें रहती है। इस कारण रोजी ऐसी न होनी चाहिये कि अधिक काम करनेमें ही मनुष्यकी सारी शक्ति खर्च हो जाय। रोजी ऐसी होनी चाहिये, जिसमें प्रतिदिन छह घंटे काम करके आदमी उतनी आय प्राप्त कर सके, जो वैज्ञानिक जीवन-स्तरके लिए आवश्यक हो। तभी वह जीवनके उच्च ध्येय सिद्ध करनेके लिए समय बचा सकता है। यदि कार्यकरको इस तरहके अवसर जीवनमें न मिलें, तो रोजीका मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। कामके औजारोंमें ऐसा सुधार करना चाहिये, जिससे उचित समय तक काम करके इच्छित उत्पादन हो सके।

कामका गौरव

हमने इस बात पर अनेक तरहसे जोर दिया है कि परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिये, जिनमें मनुष्यका विकास हो सके। यह तभी हो सकता है जब काम बेगार न बने और कार्यकरको तन्दुरुस्ती बिगाड़नेवाली और हलकी प्रक्रियाओंमें न लगना पड़े। इस दृष्टिसे वैज्ञानिक प्रगतिका लाभ उठाकर कामका गौरव बढ़ाना चाहिये। ऊबानेवाले और गंदे कामोंसे आदमीको बचाना हो, तो ऐसे काम हाथके बदले यंत्रोंसे किये जाने चाहिये।

ऊपरके ये तीनों लक्ष्य यह सूचित करते हैं कि ग्राम-अर्थतंत्रमें यंत्रोंका कितना उपयोग करना चाहिये। यंत्रोंके उपयोगका अर्थ रोजीके अवसर घटाना नहीं होता। उदाहरणके लिए, खेती-उद्योगमें यंत्र सघन खेती करके अधिक रोजी खड़ी करते हैं। ग्राम-अर्थतंत्रमें यंत्रोंके लिए कितनी गुंजाइश है, यह नीचेके उदाहरणसे बताया गया है। उसमें हम अपनी ग्रामीण गांवकी आर्थिक प्रवृत्तियोंका अमुक मात्रामें विकास करनेकी कल्पना की गई है।

रूपपुर गांवके इस तरहके विकासका कार्यक्रम परिशिष्ट-४ के खण्ड-५ में दिया गया है। स्वाश्रित ग्राम-अर्थरचनाको गतिशील

बनानेके लिए तैयार किये हुए कार्यक्रमके आधार पर खेती तथा ग्रामोद्योगोंमें यंत्रोका उपयोग करनेकी बात सोची गई है। ऐसा करनेमें इस बातका विशेष ध्यान रखा गया है कि गावकी कुल रोजी पर हानिकारक असर न हो।

परिशिष्ट—५ के कोष्ठक — १ में दस वर्षकी योजनाके पूर्व तथा योजनाके दस वर्षोंमें कितने मानव-बलका उपयोग किया गया, यह बताया गया है। दस वर्षकी योजना आरंभ हुई उससे पूर्वके वर्षमें गावमे कितनी रोजी थी और योजनाके अंतमें कितनी रोजी बढेगी, इसकी दिलचस्प तफसीलसे यह कल्पना आ जायगी कि नये यंत्रोका उपयोग करनेसे अलग अलग क्षेत्रोमे मानव-बलके उपयोग पर क्या असर हुआ है। पिछले चार वर्षोंमे, जब कमेलपुरमे वार्षिक योजनाये बनाई जाती थी तथा उन पर अमल किया जाता था, रोजीकी मात्रामे स्थिर वृद्धि हुई है। इस समयमें खेती तथा पशु-पालनकी रोजीमे कोई खास बढ-घट नहीं हुई। ग्रामोद्योग तथा दूसरे कामोंकी रोजीमे धीमी गतिसे वृद्धि हुई है। खेती तथा पशु-पालनकी रोजीमे कोई खास अन्तर न पडनेका कारण यह है कि इस समयमें खेती-उद्योगमे बडे परिवर्तन नही किये गये। खेतीकी रोजीमे थोडी वृद्धि होनेकी जो आशा रखी गई थी, वह प्रतिकूल कुदरती परिस्थितियोके कारण पूरी नहीं हुई। दूसरी ओर ग्रामोद्योग तथा दूसरी प्रवृत्तियोंकी रोजीमें, जिन पर कुदरती परिस्थितियोका कोई खास प्रभाव नहीं पडता, योजनाके अमलके कारण वृद्धि हुई। ग्रामोद्योगमें खादी और गुड तथा खाडसारीके उद्योगोंका अच्छा विकास होनेसे रोजीकी वृद्धिमे इन उद्योगोका सबसे बडा हाथ है। अन्य प्रवृत्तियोमे श्रमदान तथा क्षेत्रके विकास-कार्यक्रममें वेतन पर रखे जानेवाले आदमियोके कारण रोजीमे वृद्धि हुई थी।

मानव-बलके उपयोगकी मात्रा १९५५–५६ मे कुल उपलब्ध मानव-बलको ६३.४ प्रतिशत थी, जो १९५६–५७ में बढकर ७८.३ प्रतिशत और १९५७–५८ मे ९६.५ प्रतिशत हो गई। १९५८–५९ में रोजीकी मात्रा ८८.५ प्रतिशत रही और १९५९–६० में वह लगभग ९६.८ प्रतिशत हो जायगी, ऐसा अनुमान लगाया गया था। इस समयमें ग्रामो-

द्योगोमें काममें लिये गये मानव-बलकी मात्रामें धीमी वृद्धि हुई थी। इसी प्रकार अन्य प्रवृत्तियोंमें मानव-बलकी मात्रा ६.६८ प्रतिशतसे बढ़कर १९५७–५८ मे २७.३ प्रतिशत तथा १९५८–५९ में २५.४३ प्रतिशत हो गई। इस वृद्धिका श्रेय मुख्यत श्रमदानको तथा मकान बांधनेके उत्साहको है। सेवाओ तथा काम-धंधो (services and professions) में कोई वृद्धि नही हुई।

यद्यपि ग्रामोद्योगोंका विकास होनेसे गांवकी अर्ध-बेकारीका प्रश्न करीब करीब हल हो गया है, और मौजूदा काम-धंधोमें अधिक विकासकी गुंजाइश नही रह गई है, फिर भी उस अनुपातमें कार्यकरोकी आयमें आवश्यक वृद्धि नही हुई। १९५५–५६ में गांवकी कुल आय १०० मानी जाय, तो वह १९५६–५७ मे बढ़कर १३८.९ हो गई। १९५७–५८ मे वह ११२.२ प्रतिशत तथा १९५८–५९ में १३६.५ प्रतिशत थी। गांवकी प्रति मनुष्य आय १९५५–५६ में रु० ११८.९, १९५६–५७ में रु० १४२.६, १९५७–५८ मे रु० १७८.८ और १९५८–५९ मे रु० ३५२.२ रही थी। यह अंतिम वृद्धि न्यूनतम जीवन-स्तरकी दृष्टिसे आवश्यक आयका ४२.१ प्रतिशत है।

वर्तमान पद्धतिमे तैयार किये गये कार्यक्रमोके अनुसार आयमें पूरी वृद्धि न होनेसे १९५८–५९ के अन्तमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। उस समय गांवमें एक सहकारी खेती-समिति आरंभ की गई। समितिने अन्य समितिसे ट्रेक्टर और बिजलीसे चलनेवाला कोल्हू उधार लिया। इस वर्षकी आय अंदाजन् रु० १२८३३० होगी, जो १९५५–५६ में हुई आयकी [illegible] प्रतिशत है। १९५९–६० मे यह आय प्रति व्यक्ति रु० [illegible] प्रतिशत होगी।

इस दशके योजना-कालमें यंत्रीकरणकी क्रियाको तेज बनानेवाला माना गया है। परिशिष्ट–५ के कोष्ठक–२ में दस वर्षकी योजनाके अंतर्गत दोनों परिस्थितियोंमें — अर्थात् यंत्रोंका उपयोग करने और न करनेकी स्थितिमें — नया नया ग्रामोद्योगोंमें उपयोग किये जानेवाले मानव-श्रमकी तुलना की गई है। यदि इस योजना-कालमें यंत्रोंका उपयोग न किया जाय तो केवल उन दो क्षेत्रोंमें ही ११२१०२ मानव-दिनकी

आवश्यकता होगी। इनमे से ६९२५२ मानव-दिनोका खेतीमें तथा ४६०६२ मानव-दिनोका उपयोग उद्योगोमे होगा। इस हिसाबसे यह मानव-बल १९६९-७० में उपलब्ध मानव-बलका केवल ४६ प्रतिशत होगा। १९६९-७० में प्रति व्यक्ति खेतीकी जमीन केवल ०.८ एकड रहेगी, जो १९५५-५६ में १.०९ एकड थी। इस प्रकार प्रति एकड मनुष्योकी सख्या बढने पर भी मानव-बलकी सख्त तगी पैदा होगी। परिणाम यह होगा कि यदि यत्रोका उपयोग न किया जाय, तो विकासकी कितनी ही सभावनायें मूर्तरूप ग्रहण नही कर सकेंगी।

इस तरह असल प्रश्न तो ग्राम-अर्थतत्रके सभी अगोका वस्तुत विकास हो, इसके लिए क्रमश टेकनिकल आविष्कारोके उपयोगके विषयमें सोचनेका है। जिन्हे हम स्थगित ग्राम-अर्थरचनाके 'विकास-बिन्दु' कह सकते है उनकी खोज की जाय और यदि उनका विकास किया जाय, तो खेती तथा अन्य क्षेत्रोके सूचित विकासके लिए परिशिष्ट –४ में बताये अनुसार साधन-सामग्री प्राप्त हो जायगी। साथ ही, स्थगित अर्थतत्रके सबधमें यात्रिक परिवर्तन करने पर बेकारीका जो भय उत्पन्न होता है वह भी नष्ट हो जायगा।

अब हम इस बातका विचार करे कि योजनामें कितनी मात्रामें यत्रीकरण करनेकी बात सोची गई है। खेतीकी विभिन्न फसलोमें जो क्रियाये यत्रोकी सहायतासे हो सकती है, उन सबमें यत्रोका उपयोग किया जायगा। खेतोकी सिंचाई राज्यके ट्यूबवेल तथा सहकारी समिति द्वारा लगाये हुए एजिनकी मददसे की जायगी। दूसरी क्रियायें दो ट्रैक्टरो और उनके साधनोंसे तथा चावल कूटनेके यत्रसे की जायगी। ग्रामोद्योगोके क्षेत्रमें गुड और खाडसारीके उद्योगमें तथा पूनिया बनानेमें यत्रोका उपयोग किया जायगा। सहकारी खेती-समिति एक यात्रिक कोल्हू पहले ही ले चुकी है और दस वर्षके कार्यक्रमकी पहली मजिलमें वह दूसरा एक कोल्हू तथा दो सेन्ट्रीफ्यूगल मशीनें खरीदेगी। यह आशा रखी जाती है कि योजनाकी पहली मंजिल पूरी होने पर लोगोको यत्रमे तैयार हुई पूनिया मुहैया की जायगी। यत्रीकरणके फलस्वरूप १९६९-७० में खेतीके लिए आवश्यक मानव-बलमें घटती होगी। वह

६९२५२ मानव-दिनसे घटकर ४६०६० मानव-दिन हो जायगा। इस प्रकार उपलब्ध मानव-बल तथा आवश्यक मानव-बलके बीच सतुलन स्थापित होगा।

दस वर्षोंमे किसी भी प्रकारकी बेकारी पैदा किये बिना आयमें काफी वृद्धि होगी। परिशिष्ट–४ के कोष्ठक–२ में यह बताया गया है कि अलग अलग वर्षोंमे कमेलपुर गावकी कितनी आय होगी। गावकी कुल आय १९६४–६५ मे रु० १८७८४० तथा १९६९–७० में रु० २४४८१२५ होगी। प्रति व्यक्ति आय १९६४–६५ में रु० ३१४ तथा १९६९–७० मे रु० ३७७ होगी। दस वर्षकी योजनाके अतमे प्रति व्यक्ति होनेवाली आयका जो अदाज कूता गया है, उसकी तुलना न्यूनतम जीवन-स्तरकी दृष्टिसे आवश्यक आय रु० ३६० के साथ अच्छी तरह की जा सकती है।

परिशिष्ट–५ के कोष्ठक–३ में दस वर्षके योजना-कालमे दोनों मजिलो पर कमेलपुर गावकी उद्योग-धधोकी रचनाका चित्र पेश किया गया है। कोष्ठकमे बताये अनुसार १९६४–६५ के अन्तमे गावके धधोमें काफी विविधता आ जायगी। १९६४–६५ के अतमें खेती तथा उद्योगोका आशिक यत्रीकरण हो जायगा। जैसे जैसे गावकी आयमें वृद्धि होगी, वैसे वैसे यत्रीकरणकी गति बढेगी। और, एक तरफ उत्पादक प्रवृत्तियोमें तथा दूसरी तरफ सेवाओ और धधोमे उपलब्ध मानव-बलके उचित विभाजनके लक्ष्यको हानि पहुचाये बिना खेती तथा उद्योगोका उत्पादन बढेगा। यत्रीकरण करनेसे आयमें वृद्धि होगी और साथ ही सेवाओं तथा धधो (services and professions) की विविध प्रवृत्तियोंमे भी लोगोको रोजी मिलेगी।

परिशिष्ट

१

इज़रायलके किबुत्ज़

योजनाबद्ध गांव

किबुत्ज़ क्या है?

किबुत्ज़का अर्थ है यहूदियोंकी मातृभूमिकी समाजवादके सिद्धान्तके अनुसार स्थापना करनेके लिए स्वेच्छासे एकत्र हुए व्यक्तियोंका समूह। इस ध्येयकी सिद्धिके लिए उन्होंने मुख्यत: खेती पर निभनेवाला आर्थिक और सामाजिक घटक खड़ा किया है। इस घटकके सिद्धान्त हैं: पूर्ण समानता, परस्पर जिम्मेदारीकी भावना, शरीर-श्रम तथा वैयक्तिक पूंजीका निषेध। इस घटकमें सारा ही उत्पादन सामूहिक स्वामित्वके आधार पर होता है।

किबुत्ज़ केवल सामूहिक खेती नहीं है, बल्कि सामूहिक जीवनका एक नमूना है। किबुत्ज़में जीवनकी सारी जरूरतें सभीको मिलती हैं। समूची आय एकत्र की जाती है और किबुत्ज़के द्वारा सदस्योंकी सारी जरूरतें पूरी की जाती हैं। किबुत्ज़में हर व्यक्ति अपनी शक्तिके अनुसार काम करता है और हर व्यक्तिको उसकी जरूरतके अनुसार मिलता है।

किबुत्ज़का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है उसके सदस्योंकी स्वेच्छासे काम करनेकी वृत्ति। उसमें किसी पर किसी प्रकारका दबाव नहीं डाला जाता। किसी भी आदमीके पास ऐसी सत्ता नहीं है, जो सुमेलके आधार पर खड़े सामूहिक जीवनकी लोकतांत्रिक रचनाको नुकसान पहुंचा सके।

प्रारंभ और विकास

प्रारंभमें किबुत्जका विचार सैद्धांतिक भूमिका पर नहीं किया गया था। जो लोग सबसे पहले इज़रायलमें आये, उन्होंने अपने सिद्धान्तों तथा जीवनके मूल्योंके अनुसार सहज रूपमें उसका विकास किया। अन्यत्र उनके बसनेका अधिकार छीन लिया गया था, इसलिए सर्व-प्रथम इज़रायलमें आनेवाले ये यहूदी स्थिरता तथा सुरक्षाकी जडके रूपमें भूमिका महत्त्व भलीभांति समझते थे। यहूदियोंके लिए मातृभूमिकी स्थापना करनेकी प्रबल अभिलाषा रखनेवाले इन अगुवाओंके दल अलग अलग समयमें अलग अलग देशोंसे इज़रायलमें आये। वे शिक्षक, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील वगैरा भिन्न भिन्न पेशोंके लोग थे। लेकिन उनमें से किसीको खेतीका अनुभव नहीं था। फिर भी इन सबने जमीन पर काम करनेका तथा खेतीसे संबंधित सारा आवश्यक श्रम अपने हाथोंसे करनेका निश्चय किया। आरंभमें उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। परन्तु ज्यूइश नेशनल फंडकी ओरसे उन्हें जमीन मिली, वे अपने सिद्धान्तों पर डटे रहे और अंतमें अपनी जमीन पर स्वपरिश्रमसे अपने निर्वाह जितनी आय प्राप्त करनेमें सफल हुए। आरंभकी सफलता और कडे परिश्रमके वर्षोंमें उत्पन्न हुई मित्रताकी भावनाने प्रथम किबुत्जका रूप ग्रहण किया।

किबुत्जकी रचना

आज किबुत्जमें एकमात्र तीन चीजें मिली हुई हैं : ग्राम, सहकारी समिति और म्युनिसिपैलिटी। वह एक बडे परिवार जैसा है, जो अपने सब सदस्योंकी जरूरतें पूरी करता है, उन्हें काम-धंधा देता है और उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओंका ध्यान रखता है। सामान्य रूपमें एक किबुत्जमें तीन सौसे पांच सौ व्यक्ति रहते हैं और उनका मुख्य उद्योग खेतीका होता है।

किबुत्जका सहकारी समितिके नाते रजिस्टर कराया जाता है। उसके सभी स्त्री और पुरुष सदस्योंकी बनी हुई सामान्य सभा किबुत्जकी व्यवस्थापिका समितिके अधिकारियोंको चुन लेती है।

अलग अलग कार्योंके लिए — जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई वगैराके लिए — अलग अलग समितियाँ नियुक्त की जाती हैं। और व्यवस्थापिका समितिके सदस्य इन समितियोंके मंत्रियोंके रूपमें काम करते हैं। खेतीको व्यवस्था एक चुना हुआ खेती-व्यवस्थापक करता है। उसकी मददमें श्रम, मशीन, मेवा, पशु, मुर्गी, वनक, बिजली, ईंधन आदि विभागोंके सहायक व्यवस्थापक रहते हैं। सामान्य सभाओंका कामकाज लोकशाहिक ढंगसे किया जाता है। सारे किबुत्ज राष्ट्रीय मजदूर सहकारी समितियों तथा ग्राहक सहकारी समितियोंके साथ सम्बद्ध होते हैं। किबुत्जका कोई भी *सदस्य राजनीतिक पार्टीका सदस्य नहीं हो सकता, परन्तु पूरा किबुत्ज चाहे जिस राजनीतिक पार्टीके साथ जुड़ जाता है।*

आयोजन

प्रत्येक किबुत्ज खेती, उद्योग, शिक्षा, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों, सामाजिक सुविधाओं वगैराके लिए चार वर्षकी योजना बनाता है। इस योजनाका हेतु सबको पूरा काम-धंधा देना और जीवन-स्तरको दिनोंदिन ज्यादा ऊँचा उठाना होता है। चार वर्षकी योजनाको ध्यानमें रखकर वार्षिक योजनायें तैयार की जाती हैं। वार्षिक योजनायें इस तरह *तैयार की जाती हैं कि सबको पूरा वेतन मिल सके और साल भरमें सबको कामके समान दिन मिल सकें।* योजनाका अंतिम मसौदा सामान्य सभा चर्चा करके मंजूर करती है।

किबुत्ज द्वारा प्रबन्ध की हुई सम्पत्तिके अलावा सहकारी बैंकसे मिलनेवाले कर्जोंका भी हिसाब लगाया जाता है। किबुत्जके आर्थिक और सामाजिक जीवनकी रचना उत्पादन बढ़ानेके लिए की जाती है, इसलिए किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रमके लिए पैसे प्राप्त किये जा सकते हैं।

कामका प्रकार

किबुत्जके प्रत्येक सदस्यसे समूहके आर्थिक और सामाजिक जीवनके लिए आवश्यक सभी काम करनेकी अपेक्षा रखी जाती है। पूरे वर्षके सबके लिए काम-धंधेकी व्यवस्था की जाती है।

किबुत्ज़की खेती मुख्यतः मिश्र प्रकारकी होती है। उसमें सालके बारहों महीने लोगोंको रोजी मिलती है तथा आर्थिक प्रवृत्तिको मजबूत बनानेके लिए विस्तृत सिंचाई, यंत्रोंका उपयोग, पशु-पालन वगैरा कार्योंमें सर्जनात्मक आवश्यकतायें पूरी करनेके क्षेत्र पैदा होते हैं।

अधिक रोजी देनेकी दृष्टिसे तथा किबुत्ज़की आय बढ़ानेकी दृष्टिसे खेतीके साथ कारखानेकी पद्धतिसे चलनेवाले उद्योग भी चलाये जाते हैं। इन उद्योगोंके कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कुदरती संकटोंसे संरक्षण प्राप्त होता है।

नीचेके आंकड़ोंसे बड़े आकारके किबुत्ज़के कार्यों और उत्पादनकी कल्पना होगी

आबादी १२५० व्यक्ति
परिवार २५० (परिवारमें औसत पांच व्यक्ति होते हैं)
२५०० दुनाम यानी ६२५ एकड़ सघन खेती
२००० „ „ ५०० „ विस्तृत खेती
१०००० „ „ २५०० „ अनाजके लिए विस्तृत खेती

कुल ३६२५ एकड़
प्रति मनुष्य जमीनः २.९ एकड़

वार्षिक उत्पादन

अंडोंका उत्पादन	२०००००० अंडे
मुर्गियां	१३० टन
ढोरोंके तबेले १४०	
(हर तबेलेका दूध ५००० केन) कुल उत्पादन	७००००० केन
मछलियोंके तालाब २५० (६२५ एकड़)	७५ टन
केले ४५० दुनाम (९११२५ एकड़)	९०० टन
अंगूर ४० एकड़ (१६० दुनाम)	२०० टन
नीबू २५ एकड़ (१०० दुनाम)	६००० क्रेट
अनाज	१००० टन

पूंजीकी व्यवस्था

इजरायलकी जमीनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। किबुत्जको जमीन किरायेसे दी जाती है। पूजी लगानेके लिए शिखर सहकारी मडलो जैसी बडी सस्थायें बैंकोके द्वारा कर्जके रूपमें पैसा देती हैं। जरूरतके अनुसार थोडी थोडी रकम कर्जके रूपमें दी जाती है। ऐसा कर्ज २० से ३० वर्षको अवधिके लिए दिया जाता है। अधिक पूंजीकी जरूरत हो तो व्यापारिक कर्ज मिलता है। परन्तु उसके ब्याजकी दर ऊची होती है।

सामाजिक वातावरण

किबुत्जमें कोई गरीब नही होता और न कोई अमीर होता; और प्रत्येक सदस्यको सारी चीजें समान भागमें मिलती है, इसलिए वहा पूर्ण समानताका वातावरण रहता है। समाजकी यह माग होती है कि सब सदस्य अपने कामसे सतोष दिलायें। वहा आलस्य और कामचोरीके प्रश्न बार बार खडे नही होते। सामाजिक वातावरण ही ऐसा रहता है कि हर आदमीका मन काम करनेका होता है। परन्तु इसमे सारे प्रश्न हल नही हो जाते। तरह तरहके प्रश्न खडे होते हैं। आज वहा एक प्रश्न यह खडा हुआ है कि बच्चोको माता-पिताके साथ रखा जाय या नही। अभी तो वे बालकोके छात्रालयोंमें रहते और माता-पिताके साथ अपने कुछ घटे बिताते हैं। ऐसे मनुष्योंके प्रश्न भी होते हैं, जो समाजके साथ समरस नहीं हो पाते। नये यत्र अपनानेके बारेमे और अनुमान-पत्र (बजट) के बारेमें मतभेद पैदा होते हैं। इन सारे प्रश्नोंको लोकतात्रिक ढगसे हल किया जाता है।

नीचे बताई हुई समितिया अपना काम करती है, इसलिए किबुत्जका कामकाज सरलतासे चलता है -

१. आर्थिक समिति

अनुमान-पत्र, पूजी-नियोजन, योजना तथा खरीद-बिक्रीसे सम्बन्धित काम करती है।

२. कार्य-समिति

श्रम, प्रत्येक कामके लिए मजदूरोंका विभाजन, कुशलताके कार्य तथा दैनिक कार्योंके समय-पत्रकसे सम्बन्धित काम करती है।

३. शिक्षा-समिति

खुराक, मकान, बालशिक्षा, शिक्षक, खिलौने, माता-पिताको सलाह, सहायता तथा विशेष तालीमसे सम्बन्धित काम करती है।

४. कल्याण-कार्य समिति

मकानोंका साज-सामान, छुट्टियां, जेबखर्च, व्यक्तिगत मांगें, नये सदस्योंको दाखिल करना आदि काम करती है।

५. सांस्कृतिक समिति

छुट्टियों, त्योहार, पुस्तकालय और वाचनालयका काम देखती है।

६. स्वास्थ्य-समिति

स्वास्थ्य, दवादारू और डॉक्टरी तालीमका काम करती है।

७. सुरक्षा-समिति

रक्षा, चोरीसे संरक्षण, रातकी चौकीदारी, खेतीकी सुरक्षा, सलामतीके उपाय तथा रास्तोंकी सलामतीके काम देखती है।

८. खेलकूद-समिति

खेलकूदके लिए मदद, खेलकूदकी तालीमकी व्यवस्था वगैरा काम करती है।

ज्यादातर लोगोंको उनके दैनिक कामके सिवा एकाध दूसरा काम भी सौंपा जाता है। समितियोंके सदस्य प्रतिवर्ष बदलते हैं। खेती-व्यवस्थापक, खजानची वगैरा जिम्मेदार पदाधिकारियोंको तीन वर्ष तक चालू रहने दिया जाता है।

शिक्षाकी व्यवस्था

बालकोंके छात्रालय तो मानो किबुत्जके हृदय हैं। ये छात्रालय माता-पिताके घरके पास ही रखे जाते हैं। शिक्षासे सबंध रखनेवाले

कार्यों पर उदार हाथोंसे पैसा खर्च किया जाता है। शिक्षाकी अद्यतन पद्धतियां सीखनेके लिए कुछ व्यक्तियोंको विदेशोंमें सीखनेके लिए भी भेजा जाता है। किबुत्जकी शिक्षा-पद्धतिमें परीक्षाओंका अंत कर दिया गया है। कहीं कहीं तो १० विद्यार्थियों पर एक शिक्षकका अनुपात सिद्ध कर लिया गया है, जिस पर विश्वास करना कठिन होता है।

बालकों पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। बालक ज्यों ही काम करने योग्य हो जाते हैं, त्यों ही उन्हें खेतोंमें और पशुओंके साथ काम करना सिखाया जाता है। बालक अपने खेतोंमें स्वयं खेती करते हैं। वे पशु, भेड़-बकरी और मुर्गी-बतक पालते हैं। बालक पन्द्रह वर्षके होते होते तो ४ से ५ घंटेका शरीर-श्रम करने लगते हैं। उन्हें खेती और इंजीनियरिंगकी तालीम दी जाती है। इंजीनियरिंगकी तालीमके लिए वे कारखानोंमें काम करते हैं। बहुत कम बालक युनिवर्सिटीकी परीक्षामें बैठते हैं।

यह पर्याप्त मात्रामें सिद्ध हो चुका है कि किबुत्जके बालकोंमें सूझ-बूझ अधिक होती है। वे अधिक अच्छे सैनिक अधिकारी बन सकते हैं। उनमें ज्यादा अच्छी व्यवस्था-शक्ति होती है। इसके सिवा, वे बिलकुल स्वतंत्र वृत्तिके होते हैं।

किबुत्जमें स्त्रियोंका दरजा बहुत ऊंचा होता है। घरकी कड़ी मजदूरीसे मुक्त होनेके कारण वे समस्त सामाजिक प्रवृत्तियोंमें पुरुषोंकी तरह ही भाग लेती हैं, इसलिए उनका व्यक्तिगत विकास अधिक होता है।

किबुत्जके सदस्योंका जीवन-स्तर उसकी आयके अनुसार होता है। नये स्थापित किबुत्जमें प्लायवुडकी झोंपडियां अथवा तम्बू होते हैं। पुराने किबुत्जमें मकान सारी आधुनिक सुविधाओंसे युक्त होते हैं। लेकिन सामान्य किबुत्जमें सदस्योंका जीवन-स्तर भारतमें ३०० रुपये मासिक कमानेवाले व्यक्तियों जैसा होता है। पानी, बिजली और डॉक्टरी सहायताकी व्यवस्था करना राष्ट्रकी जिम्मेदारी होती है।

इस प्रकार किबुत्ज योजनाबद्ध पद्धतिसे काम करनेवाले ग्राम-परिवारके समान होता है।

२

चीनी कम्यून

क्षेत्रीय आयोजनका एक उदाहरण

सन् १९५८ में इन कम्यूनोंका आरम्भ हुआ तभीसे वे उग्र वाद-विवादका विषय बने हुए हैं। इस विवादमें उतरे बिना नीचे यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि ये कम्यून किस प्रकार विकेन्द्रित संगठनके रूपमें काम करते हैं तथा लोकतांत्रिक पद्धतिसे तैयार की हुई योजनाओं पर कैसे अमल करते हैं। यह विवरण चीनके सरकारी साहित्यके आधार पर तथा दिल्लीमें भरे गये विश्व-कृषि मेलेके चीनी मंडपमें आये हुए कुछ कम्यूनोंके व्यवस्थापकोंसे हुई बातचीतके आधार पर तैयार किया गया है। इस समय चीनी कम्यूनोंकी दशा अच्छी नहीं है। फिर भी उनकी इतनी उपयोगिता जरूर है कि वे क्षेत्रीय आयोजनके एक ढांचेकी रूपरेखा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

कम्यूनोंका आरम्भ

चीनमें 'जो जोते उसकी जमीन' की क्रांति आरंभ हुई, उसके साथ ही सहकारी आन्दोलन भी शुरू हुआ। जमीनके बंटवारेके बाद तुरन्त ही परस्पर सहायता करनेवाले दल खड़े हो गये। ये दल गरीब किसानोंके बने हुए थे। उनके पास बोझ ढोनेवाले पशु और खेतीके अन्य साधन नहीं थे। वे खेतीके काममें एक-दूसरेकी मदद करते थे। परन्तु जमीन, पशु और साधन उन्होंने वैयक्तिक मालिकीके ही रखे थे। साम्यवादी शासनने उन्हें प्रोत्साहन दिया, इसलिए इन परस्पर सहायता करनेवाले दलोंने सहकारी खेती-समितियोंका रूप ले लिया। ये समितियां आपसमें कर्ज लेकर अधिक अच्छे साधन और पशु खरीद सकीं। आरंभमें समितिके सदस्य होनेवाले जमीन-मालिकोंको बटाईके समय जमीनका फसल-में हिस्सा देकर जमीन पर उनका अधिकार स्वीकार किया जाता

था। परन्तु बादमें जैसे जैसे साम्यवादी पक्षके कार्यकर्ता वातावरणको अनुकूल बनाते गये, वैसे वैसे जमीनका हिस्सा देना बन्द करके मजदूरीके अनुपातमें रोजी चुकाना शुरू किया गया। ये खेती-समितियां सफल तो हुईं; परन्तु यह देखा गया कि सिंचाईके साधनों तथा स्थानीय साधनोंका पूरा उपयोग करनेके बड़े बड़े कार्यक्रम हाथमें लेनेकी शक्ति इन समितियोंमें नहीं थी। इस कारण इन खेती-समितियोंको एकत्र करके नव अथवा बड़ी सहकारी समितियां बनाई गईं। ऐसा होनेसे इन खेती-समितियोंने स्थानीय उद्योग, खरीद-बिक्री, बैंकिंग वगैरा किसानोंकी सेवाके काम हाथमें लिये। मजदूरोंकी संख्या बढ़नेसे ज्यादा अनुशासनकी जरूरत मालूम हुई। स्थायी मजदूर-समूह बनाये गये और उन्हें विशेष काम या विशेष कार्यक्षेत्र सौंपे गये। दैनिक कार्यको व्यवस्थित बनानेके लिए समस्त जीवनको सैनिक ढंगसे संगठित किया गया। स्त्रियां उत्पादन-कार्यमें भाग ले सकें, इसके लिए बालगृह और सार्वजनिक रसोई-घर कायम किये गये।

ये बड़ी सहकारी समितियां अनेक स्थानों पर अपने-आप अस्तित्वमें आईं। इसके बाद साम्यवादी पक्षने इन समितियोंके कामकाजका अध्ययन किया और राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ानेकी उनकी संभावनाओंसे प्रभावित होकर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलनका रूप देनेका निश्चय किया। साम्यवादी पक्षके कार्यकर्ताओंने लोगोंके साथ काम करके, गांवोंमें ऐसी समितियोंके औचित्यके बारेमें निःसंकोच विचार-विमर्श करनेका मौका लोगोंको देकर तथा इस संबंधमें लोगोंको शिक्षित बनाकर अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया। जब लोगोंने यह कार्यक्रम स्वीकार किया तभी साम्यवादी पक्षने उनकी व्यवस्थाके लिए कुछ नियम निश्चित किये। अब ऐसी समितियोंको [illegible] कम्यून कहा जाता है।

कम्यूनोंका विकास

अपने कामकाजके कारण कम्यूनको समाजका सबसे छोटा आधार-भूत घटक माना गया है। इसका काम उद्योग तथा खेतीका उत्पादन, व्यापार, सांस्कृतिक और शैक्षणिक कार्य तथा राजनैतिक और सैनिक कार्यवाहियोंका संचालन करना है। इस कम्यूनके निर्माण होनेकी [illegible]

सहकारी समितियोके सदस्योको ले लिया जाता है। इन समितियोमें बडी सख्याके गावोका समावेश कर लिया जाता है। कस्बेमे, जो राज्यका आधारभूत घटक है, एक या एकसे अधिक कम्यून हो सकते हैं।

सहकारी समितियोके अलावा व्यक्ति भी अपने उत्पादनके साधन कम्यूनको सौपकर उसके सदस्य बन सकते हैं। जो जायदाद कम्यूनको सौपी गई उसमें से आधी शेयर-पूजीकी तरह और आधी जमा-पूजीकी तरह मानी गई। इन कम्यूनोकी व्यवस्था सारे सदस्यो द्वारा चुने हुए सदस्योकी समितिया करती हैं। साम्यवादी पक्षकी ओरसे या कम्यूनके किसी दलकी ओरसे किसी उम्मीदवारको खडा नही किया जाता। खेती, उद्योग, शिक्षण, सैनिक कामकाज, गावकी सुविधायें वगैरा तरह तरहके कामोकी व्यवस्था अलग अलग समितिया करती है। साथ ही, ज्यादातर सदस्योको एक या दूसरी समितिके किसी न किसी कामकी जिम्मेदारी सौंपी जाती है। इसके सिवा, आवश्यक बातोकी चर्चा करनेके लिए सामान्य सभाकी बैठक समय समय पर हुआ करती है। इन कम्यूनोमें लोकतान्त्रिक ढगसे काम होता है और सारे कामोमें सबको समान अधिकार होते हैं।

कम्यूनका काम खेतीका उत्पादन बढाना, उद्योगोंका विकास करना, रास्ते बनाना, सिचाईकी नालिया वगैरा साफ करना तथा अद्यतन यातायातकी व्यवस्था करना होता है। कम्यूनके भीतर डाककी व्यवस्था कम्यून स्वय ही कर लेना है। वह राज्य बैंककी स्थानीय शाखायें, राज्यका व्यापार तथा प्राथमिक और माध्यमिक शालायें चलाता है तथा विवाहोंका रजिस्टरमें दर्ज करता है। इस प्रकार वह सरकारके आधारभूत घटकका तरह काम करता है।

समस्त स्थानीय सम्पत्ति अर्थात् मानव-शक्ति और साधन-सम्पत्ति कम्यूनके जनतान्त्रिक नियत्रणके अधीन है। कम्यूनका सबसे बडा सगठन है काग्रेस। सारे उत्पादक मडलोंके चुने हुए प्रतिनिधि तथा स्त्रिया, युवक, वृद्ध, शिक्षक, औद्योगिक मजदूर, किसान आदि वर्गोंके प्रतिनिधि इस काग्रेसके सदस्य होते हैं। व्यापक आधार पर चुनी हुई यह काग्रेस बादमें एक प्रबन्धकारी समिति और निरीक्षक समिति नियुक्त करती है।

बहुत अलग विशिष्ट विभागोंवाली इस व्यवस्थापक समितिके हाथमें शासनकी सत्ता होती है।

एक निश्चित वेतन-पद्धतिसे सदस्योंको उनके कामके अनुसार वेतन चुकाया जाता है। कुशलताके कामका और विशेष धन्धेसे सम्बन्धित देखरेख ऊंचा वेतन दिया जाता है। मजदूरीकी दरें सामान्य सभा प्रति-वर्ष वार्षिक योजना तथा अनुमान-पत्र (बजट) निश्चित करते समय तय करती है।

योजना

प्रतिवर्ष स्थानीय उपलब्ध सम्पत्ति तथा सरकारकी ओरसे मिलने-वाली रकमके आधार पर कम्यूनके लिए योजना तैयार की जाती है। इस योजनामें केवल उत्पादनके लक्ष्योंका ही समावेश नहीं होता, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सेवायें, गांवकी सुविधायें, मकानों [illegible] वगैरहका भी समावेश होता है। व्यवस्थित मकानों, सबकी अनुकूलताका ध्यान रखकर खोली गई दुकानों, आराम-घरों, शिशु-केन्द्रों, बाल-मन्दिरों, माध्यमिक शालाओं, सार्वजनिक रसोई-घरों [illegible] व्यवस्था करके कम्यूनको योजनाबद्ध बस्ती बनानेका प्रयत्न किया जाता है। सामूहिक जीवनको प्रोत्साहन दिया जाता है। स्त्रियों पर बालबच्चोंके लालन-पालन और काम दोनोंका जो बोझ है उसे हलका बनाया जाता है। जिन बूढ़ोंकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं होता, उन्हें 'वृद्धघर' में रखा जाता है। लेकिन सार्वजनिक रसोई-घरोंका या बालगृहोंका उपयोग करना अनिवार्य नहीं होता।

[illegible] औसतन [illegible] की आबादीवाले क्षेत्रके निवासियोंको [illegible] जमीन, खनिज पदार्थों, पशुओं तथा [illegible] और [illegible] दी जाती है। [illegible] देना पड़ता है। [illegible] और विकास करते हैं। इसके सिवा [illegible] करते हैं।

प्रत्येक कम्यून अपनी योजना तैयार करता है। परन्तु सारे कम्यूनोंके व्यवस्थापक तथा सरकारी अधिकारी साथ मिलकर उस योजनाको राज्यकी योजनाके साथ जोड देते हैं।

उत्पादन

कम्यूनके सारे सदस्योंको खेती, उद्योग, सेवाओं वगैराके अनेक दलोंमें बाट दिया जाता है। इन दलोंकी गतिशीलता (mobility) पर उत्पादनके कार्यक्रमका आधार रहता है। जो लोग उद्योगों और सेवाओंका काम करते हैं, वे खेतीके खास मौसममें खेतीका काम भी करते हैं और बाकीके समयमें अपना अपना काम करते हैं। कम्यूनोंमें बेकारी नहीं होती। क्योंकि वहा बेकार पड़ी हुई सम्पत्ति तथा साधनोंका पूरा उपयोग करके बडी सख्यामें कारखाने खडे किये गये हैं। वे कारखाने अलग अलग पद्धतियोंसे चलाये जाते हैं। खेती सघन पद्धतिसे लगभग बागाती खेतीकी तरह की जाती है। उसमें आवश्यक मजदूरोंको लगाकर उनकी शक्तिका पूरा पूरा उपयोग किया जाता है। खेती और उद्योगोंकी योजना पहले तो स्वावलम्बनके खातिर की जाती है। बाजारके लिए भी उनकी योजना की जाती है। साम्यवादी पक्षके एक प्रस्तावके अनुसार स्थानीय परिस्थितिको ध्यानमें रखकर उद्योगोंकी व्यवस्था करने तथा धीरे धीरे खेतीसे उद्योगोंकी ओर मजदूरोंको मोडनेकी बात सुझाई गई है। ये उद्योग रासायनिक खाद, जन्तुनाशक दवाएं, खेतीके साधन तथा इमारतोंमें लगनेवाला सामान बनानेवाले हो सकते हैं, कच्चे मालको तैयार मालमें बदलनेवाले हो सकते हैं, शक्कर, कपडा तथा कागज बनानेवाले हो सकते हैं, खानों, धातु-विज्ञान और बिजलीकी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले हो सकते हैं तथा दूसरे छोटे और बडे उद्योग हो सकते हैं।

इसमें बडे बडे राष्ट्रीय उद्योगोंके साथ विकेन्द्रित योजनाके लिए स्पष्ट आह्वान है। प्रत्येक कम्यूनको स्थानीय नेतृत्वके मार्गदर्शनमें तथा अपनी परिस्थितियोंका और मजदूरोंकी आवश्यक सख्याका खयाल करके हर तरहके उद्योगोंका विकास करना होता है। कम्यूनोंके सघ

भी ग्रामस्तर पर या उच्चतर स्तर पर कामकाज करनेके लिए कुछ मानव-बलका उपयोग करते हैं।

वेतन

कम्यूनके सारे सदस्योंको उत्पादन-योजनामें पहलेसे निश्चित किये हुए स्तरके अनुसार मजदूरी चुकाई जाती है। मजदूरीके सिवा सदस्यों तथा उनके परिवारोंको मुफ्त भोजन मिलता है। परन्तु सामान्य नीति यह है कि जब तक कम्यूनकी आर्थिक स्थिति स्वावलम्बी बनने जितना कद एकम न हो जाय, तब तक मुफ्त चीजें देना बन्द रखा जाय।

जीवन-पद्धति

कम्यून पितृप्रथावाले पारिवारिक जीवनके बदले लोकतांत्रिक पारिवारिक जीवनकी स्थापनाका प्रयत्न करता है। पहले चीनमें मजदूरोंको उनके परिवारके मुखियाके मारफत मजदूरी चुकाई जाती थी; उसके बदले अब हर मजदूरको व्यक्तिगत रूपमें मजदूरी चुकाई जाती है। स्त्रियोंकी मुक्तिके लिए बालगृहों, बाल-मंदिरों, सार्वजनिक रसोई-घरों, सिलाई-दलों वगैराकी सुविधायें उत्पन्न की जाती हैं। इनके फलस्वरूप स्त्रियां स्वतंत्र बन गई हैं। गांवोंमें प्रतिदिन आठ घंटे काम करनेका नियम लागू किया गया है। इस समयको घटाकर छह घंटेका दिन करनेका प्रयत्न चल रहा है। इसके सिवा, दो घंटे अपने मनचाहे विषयका अध्ययन करनेके लिए या कम्यूनकी ओरसे चलनेवाली काम शालाओंमें अध्ययन करनेके लिए रखे गये हैं।

कम्यूनोंमें कारखानों या सेनाकी तरह जीवन अनुशासनबद्ध है। प्रत्येक कम्यूनमें निश्चित समय-पत्रकके अनुसार काम किया जाता है। यहां सैनिक तालीम भी दी जाती है।

सरकारी मार्गदर्शन

जब कम्यून अच्छी तरह काम करने लगे और जब उनमें लगभग सारी ग्राम-आबादीका समावेश कर लिया गया, तब साम्यवादी पक्षने तथा सरकारने उनके आर्थिक विकासके लिए सक्रिय सहायता

देना शुरू किया। पक्षके अगुवा लोग भाषण देकर तथा लोगोंके साथ खेतोंमें और कारखानोंमें काम करके कामका स्तर निश्चित करते थे और उनका उत्साह टिकाये रखते थे। सरकारने कम्यूनोंको खेतीके लिए नया औद्योगिक कारखानोंके लिए मार्गदर्शनके रूपमें और आर्थिक कर्जके रूपमें सहायता की थी।

दो उदाहरण

१. त्सान चुआ

यह उत्तरी चीनका एक कम्यून है। ५३ प्रगतिशील सहकारी समितियोंने मिलकर इस कम्यूनकी स्थापना की थी। उसमें ६९ गावोंका समावेश कर लिया गया है। उसमें १३०७३ परिवार और लगभग ६४००० आदमी हैं। उसके पास २३००० एकड़ जमीन है और सारी जमीनमें सिंचाई की जाती है। ४७ प्रतिशत जमीनमें ऊंचाईवाली जमीनमें पानी बहाकर सिंचाई की जाती है और बाकी जमीनमें पंपसे सिंचाई की जाती है। सदस्योंके पास अपनी व्यक्तिगत मालिकीके छोटे छोटे पशु और शाक-भाजीकी बाड़ीवाले मकान हैं।

कम्यूनकी जमीनमें गेहूं, कपास, मकई, बाजरी, गलजम, मूंगफली, धान, शकरकंद और अन्य विविध फसलें पकाई गई थी। ये फसलें बहुत नजदीक-नजदीक बीज बोकर पकाई गई थीं।

३०००० काम करनेवाले आदमियोंमें से ७५ प्रतिशत लोगोंने पूरा समय जमीन पर काम किया। बाकीके लोग ३३४ औद्योगिक कार-खानोंमें काम करते थे। इन कारखानोंमें २ बिजली-केन्द्र, ४ यंत्रोंकी मरम्मत करनेवाले वर्कशाप, ७ खेतीके साधनोंके कारखाने, ५ घरेलू चीजोंके कारखाने, ७ सीमेंटके कारखाने, ११ ईंटके भट्ठे, २ मिट्टीके बरतनोंके कारखाने, [illegible] आटेकी चक्कियां, ७२ खाद्य सामग्रीके कारखाने, [illegible] चमड़ेके [illegible] शराबकी भट्ठियां, २० कपड़ा-मिलें, [illegible] आदिका समावेश होता है।

कम्यूनमें पांच विभाग किये गये हैं। हर विभागमें दवाखाना, [illegible] ट्रैक्टर स्टेशन तथा नागरिकोंकी अन्य

आवश्यकतायें जुटानेकी व्यवस्था की गई है। कम्यूनकी अपनी एक बैंक भी है। उसमें सदस्य अपनी बचत जमा कराते हैं। बैंक उन्हें पैसे उधार देती है और उनकी ओरसे पैसे चुकानेका काम भी करती है।

वेतन और मजदूरीका स्तर प्रतिवर्ष निश्चित किया जाता है। इंजीनियर, डॉक्टर, कम्यूनके व्यवस्थापक वगैरा लोगोंको ऊंचा वेतन दिया जाता है। परन्तु सबसे अधिक वेतन और सबसे कम वेतनके बीच केवल पाच गुना फर्क होता है। जिन्हें अधिक वेतन मिल सकता है, वे बहुत बार कम वेतन लेते हैं।

हर पाच सदस्य प्रतिवर्ष अपना एक प्रतिनिधि चुनकर कम्यूनकी कांग्रेसमें भेजते हैं। ये प्रतिनिधि ३७ सदस्योंकी एक व्यवस्थापक समिति तथा कम्यूनका व्यवस्थापक चुनते हैं। यह व्यवस्थापक पहले किसान था और उसने चीनकी मुक्तिके बाद रात्रिशालाओंमें शिक्षा पाई थी। वह प्रतिमास ७ दिन तक खेतीका काम करता है; इसके सिवा व्यवस्था और निरीक्षणका काम भी करता है।

२. हुशिंग कम्यून

यह कम्यून २७ खेती सहकारी समितियोंने एकत्र होकर स्थापित किया था। इसमें १२३ गाव शामिल कर दिये गये हैं। कम्यूनमें ११००० परिवार तथा ५५००० आदमी हैं। इनमें २०००० आदमी ऐसे हैं, जो कड़ी मेहनत कर सकते हैं। कम्यूनके पास २५००० एकड़ खेतीके लायक जमीन है। यह जमीन बहुत उपजाऊ है, लेकिन वहां पानीकी कमी है। कम्यूनके सदस्य व्यापारिक फसलोंके रूपमें कपास और सुराकके लिए ज्वारबाजरा, गेहूं तथा साग-भाजी पैदा करते हैं।

कम्यूनकी स्थापनाके बाद सदस्योंने जल-संग्रहका कार्यक्रम हाथमें लिया और एक सालमें नालाबोंको खोदकर गहरा बना दिया। इन नालाबोंमें इतना पानी संग्रह किया जा सकता है, जिससे २०००० एकड़ जमीनमें ऊंचाईसे नीचे पानी बहाकर या पम्पकी मददसे सिंचाई की जा सके।

कम्यूनमें पहले ही वर्षके कामसे हर परिवारको कुल रु० १००० की आय हुई। परन्तु इस आयको परिवारोंमें बांटनेके बजाय कम्यूनने

सिनेमा, बिजली, टेलीफोन तथा ट्रेक्टरोंके लिए अलग निकालनेका निर्णय किया। उसने सारे सभ्य परिवारोंको खुराक, डॉक्टरी मदद और बाल-गृहोंकी सेवा मुफ्त दी। उसने ऐसी व्यवस्था भी की, जिससे प्राथमिक, माध्यमिक और खेतीका शिक्षण मुफ्त मिले। इसके सिवा, होशियार विद्यार्थियोंको उच्च शिक्षणके लिए छात्रवृत्ति देनेकी व्यवस्था भी की।

कम्यूनके पास १५ कपासकी जिनें, १ बिनौलेसे तेल निकालनेका कारखाना, रजाइयों और सर्दीके कपड़ोंके लिए रुई दबानेके १५ कारखाने, ४५ आटेकी चक्कियां, ३० सुतारोंके वर्कशाप, १५ लुहारोंके वर्कशाप, २८ मिट्टीके कारखाने — जिनमें खपरैल, ईंटें तथा नल बनाये जाते है, ८५ जूतोंके कारखाने, ३६ दरजीकी दुकानें, ३५ धुलाईकी दुकाने, ६ रासायनिक खादके कारखाने, ८२ सजीव खादके कारखाने तथा १ यन्त्रोंकी मरम्मतका वर्कशाप है। इस कम्यूनमें बॉल बेयरिंग हाथसे बनाया जाता है।

सुविधाओंमें कम्यूनके पास २५४ सार्वजनिक रसोई-घर, २१६ बालगृह, ९३ बाल-मन्दिर, ६० प्राथमिक शालायें, ९ माध्यमिक शालायें, २१ प्रसूति-गृह तथा २० वृद्धघर हैं। यह कम्यून एक युनिवर्सिटी भी चलाता है। उसमें कुशल व्यक्ति सीखनेवाले लोगोंको शिक्षा देते हैं।

३

विभिन्न घटकोंके लिए प्रक्रिया और प्रवृत्तियोंके विभाजनका नमूना

क्र० ग्रामोद्योग प्रवृत्ति	प्रक्रिया	गृह घटक	ग्राम घटक	क्षेत्र घटक	प्रादेशिक घटक
१. खादी	कताई	कताई	–	–	–
	पिंजाई	–	पिंजाई	–	–
	पूनी बनाना	–	–	–	–
	बुनाई	बुनाई	ताना बनाना तथा मांजी पिलाना	–	–
	रंगाई तथा छपाई	–	–	सादे सूत तथा कपडेकी रंगाई	कलापूर्ण छपाई तथा रंगाई
	धुलाई तथा केलेन्डरिंग	–	–	धुलाई	केलेन्डरिंग
	बिक्री तथा रुई एकत्र करना	–	–	आंतरिक बिक्री	बाहरी बिक्री तथा रुई एकत्र करना

[illegible]	चमड़ा उतारना तथा मृत पशुओंके शव एकत्र करना	–	चमड़ा उतारना	चमड़ा उतारना तथा मृत पशुओंके शव एकत्र करना	–
	चमड़ा कमाना	–	–	–	चमड़ा कमाना
	चमड़की चीजें बनाना	चमड़की चीजें बनाना	–	–	–
	कच्चा माल तथा चमड़े एकत्र करना	–	–	–	कच्चा माल तथा चमड़े एकत्र करना
	बिक्री	–	–	आंतरिक बिक्री	बाहरी बिक्री
३. मिट्टीका काम	ईंट तथा खपरैल बनाना	–	–	ईंट तथा खपरैल बनाना	–
	बरतन बनाना	–	बरतन बनाना	–	ग्लेज़वाले बरतन बनाना
४. गुड़ और खाँडसारी	गन्ना पेरना	गुड़ तथा राब बनानेके लिए बैलसे चलता कोल्हू	–	खाँडसारीके लिए बिजलीसे चलता कोल्हू	–

५. तेल	तेलहन पेरना	तेलहन पेरना	बिक्री	तेलहन संग्रह करना	तेल-उद्योग
६. साबुन	तेलहन पेरना तथा साबुन बनाना	–	तेलहन पेरना तथा साबुन बनाना	आंतरिक बिक्री	बाहरी बिक्री तथा कच्चा माल और तेलहन संग्रह करना
७. सुतारी और लुहारी	खेती तथा ग्रामोद्योगोंके साधन	खेतीके साधन	औजारोंकी मरम्मत	चरखे बनाना	घानियां, कोल्हू, पिंजाईकी मशीन तथा चरखेके लोहेके भाग, लकड़ी चीरना
	मकान बनानेका माल-सामान	–	–	–	–
	छोटा वर्कशाप	–	–	छोटा वर्कशाप	–
	फाउंड्री-वर्कशॉप	–	–	–	फाउन्ड्री-वर्कशाप
८. स्वास्थ्य	दवाखाना	–	हेल्थ विजिटर नर्स	दवाखाना	अस्पताल

४

कमेलपुरके अर्थतंत्रकी स्वावलम्बनकी प्रक्रिया

१९६०–६१ से १९६९–७० तकके १० वर्षकी अवधिमें कमेलपुर गावकी खेती, पशु-पालन, ग्रामोद्योग तथा मकान-बंधाई वगैराके लिए तैयार किये गये विकास-कार्यक्रमका खर्च अनुमानसे रु० ५१४३९० होगा। इसमें रु० २२४१८५ का श्रम किया जायगा तथा कच्चे मालके रूपमें रु० ७०३७० का खेतीका माल काममें लिया जायगा। यह खर्च कुल खर्चका ५८.२६ प्रतिशत है। बाकीके ४२.७४ प्रतिशत खर्च अर्थात् रु० २१९८३५ में से करीब रु० १४३८०२ (२७.९ प्रतिशत) की सीमेन्ट, लोहा, रंग, खाद और अच्छी जातिके पशु बाहरसे मगाये जायगे। और बाकी रहे रु० ७६०३८ की ईंट, चूना, बालू, लकडी वगैरा स्थानिक श्रमसे तैयार किये जायगे। ईंटें पकानेके लिए कोयला बाहरसे लाया जायगा।

इस प्रकार सारे खर्चको दो बडे भागोमें बाट दिया गया है। एक भाग स्थानीय श्रम और खेतीके उत्पादनका है, जो ७२.१ प्रतिशत है। दूसरे भागमें २७.९ प्रतिशत माल बाहरसे मगाया जायगा। पहले भागके खर्चके लिए गावमें ऐसी कार्यक्षम व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे स्थानीय मानव-शक्ति और दूसरी सम्पत्तिका विकास-कार्यक्रमके लिए पूरा पूरा उपयोग हो। दूसरे भागके खर्चके लिए गावको अधिक उत्पादन करना चाहिये ताकि बाहरकी चीजोका आयात किया जा सके।

पहले भागका खर्च पूरा करनेके लिए ग्रामवासियोने अपनी तैयारी दिखाई है। और इसके लिए उन्होने जरूरी कदम भी उठाये

है। उन्होंने गांवके ३० सदस्योंकी एक सहकारी समिति बनाई है तथा एक बैंककी स्थापना की है। इस बैंकने गांवमें उपलब्ध संपत्तिका विकास-कार्यक्रमोंमें उपयोग करनेकी जिम्मेदारी अपने सिर ली है। १९५९-६० में सहकारी समितिको तीन स्थानों पर बोरिंग करनेमें तथा पानी निकालनेके लिए बिजलीसे चलनेवाले पंप बैठानेमें सफलता मिली है। सिंचाईके लिए उसने रु० ६४०० खर्च किये हैं तथा क्षेत्र-समितिसे उसने एक ट्रैक्टर और बिजलीसे चलनेवाला कोल्हू किराये पर लिया है। बैंकने मकान बांधनेका लगभग सारा ही कार्यक्रम पूरा कर दिया है। मकान बांधनेका खर्च रु० १२५०० कूता गया है। इस प्रकार मनुष्यों और साधनों जैसी गांवकी सम्पत्तिका पूर्ण उपयोग करनेमें सफलता मिलेगी।

इस वर्षकी अवधिमें बड़े पैमाने पर जो पूंजी लगानी होगी, उसके लिए गांव किस प्रकार अपनी शक्तियोंका विकास करेगा, इसका अध्ययन बड़ा रसप्रद सिद्ध हो सकता है। सहकारी खेती-समिति तथा बैंकके कारण कार्यक्रमका खर्च कम होगा। ये दोनों संस्थायें तुरन्त नकद मजदूरी दिये बिना इस कार्यक्रमके लिए आवश्यक श्रम प्राप्त कर सकेंगी। अधिकांश श्रम उत्पादनके समय मजदूरी देनेकी बात तय करके प्राप्त किया जायगा। उदाहरणके लिए, १९५९-६० में कुछ सदस्योंने थोड़ी या पूरी मजदूरी कटनीके समय ली थी। इसके सिवा, सहकारी खेती-समितिने ही गन्ना पेरनेकी जिम्मेदारी अपने सिर ली है, इसलिए पेरनेके लिए जो गन्ना चाहिये उसकी नकद कीमत नहीं देनी पड़ेगी। इस परसे यह मान लेना गलत नहीं होगा कि प्रतिवर्ष चालू पूंजीके रूपमें कुल चालू खर्चके ½ भागसे ज्यादा रकमकी आवश्यकता नहीं होगी।

इस वर्षके समयमें विकासकी अलग अलग मंजिलों पर गांवकी आयके अनुपातमें कितनी पूंजी रोकनी पड़ेगी, इसका पता लगानेमें

पूर्व हमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। टिकाऊ साधनोंके खर्चमें उनकी घिसाईके खर्चकी व्यवस्था शामिल होनी चाहिये, ताकि उनके टूटने पर नये साधन खरीदनेमें सुविधा रहे। इसके लिए सह-कारी खेती-समिति अपनी आयका बटवारा सदस्योंमें करे उसके पहले आयका दस प्रतिशत भाग वह अलग निकाल लेगी। इस तरह लोगोंकी आय पर घिसाई-खर्चका सीधा असर नहीं पड़ेगा।

कोष्ठक नं० ३ में यह बताया गया है कि इस दस वर्षकी अवधिके पहलेके एक वर्षमें गांवकी आयका कितना भाग पूंजीके रूपमें लगाया गया था। कोष्ठक नं० ४ में यह दिखाया गया है कि दस वर्षकी अवधिके अंतिम वर्षमें आयका कितना भाग पूंजीके रूपमें लगाया जायगा।

कुल वार्षिक आयका कितना भाग वार्षिक पूंजीके रूपमें लगाया जायगा, यह देखनेसे इस बातका पता चलेगा कि योजना-कालमें अधिकसे अधिक कितनी पूंजीकी जरूरत होगी। उसके आधार पर यह देखा जा सकता कि वार्षिक आयका कितना भाग चालू उपयोगके लिए मिल सकेगा और कितना भाग पूंजी-नियोजनके लिए बचाना पड़ेगा।

मकान बांधनेके कार्यक्रमकी वजहसे, जिसमें पहले पांच वर्षोंमें प्रतिवर्ष लगभग रु० १०,२०० का खर्च होगा, तथा उत्पादनके साधन तैयार करना जरूरी होनेकी वजहसे १९५९–६० की आयका ५०.७ प्रतिशत भाग पूंजी-नियोजनके लिए रखना होगा। इस नियोजनका [illegible] म अर्थात् प्रथम पांच वर्षकी अवधिके अंतिम वर्षमें [illegible] उसका ३५.९ प्रतिशत होगा। लम्बे समय तक [illegible] नियोजित पूंजीकी मात्रा इन दो वर्षोंमें क्रमश. [illegible]

[illegible] अवशिष्ट पूंजीका जो नियोजन करना होगा, [illegible] अधिक आसान होगा। इस तरह कुल नियोजन

१९५९-६०की आयका २९.५ प्रतिशत होगा तथा दस वर्षकी योजनाके अंतिम वर्षमें होनेवाली आयका १२.१ प्रतिशत होगा।

उत्साहसे काम करनेवाले स्थानीय संगठनोंके पूंजी-नियोजनका तथा घिसाई-फंड और अमानत-फंडकी व्यवस्थाका विचार करने पर ग्रामवासियोंकी अपना लक्ष्य सिद्ध करनेकी शक्तिमें विश्वास करनेके लिए हमारे पास पर्याप्त कारण है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्यमें यदि कुदरत रूठ जाय, तो कठिनाइयां उठाकर भी ग्रामवासी जरूरी पूंजी अपने विकास-कार्यक्रममें अवश्य लगायेंगे।

कोष्ठक

योजनाके साधनोंका

[१९६०-६१ से

क्रमांक	ब्यौरा	कुल खर्च (रुपये)	मजदूरी	खेतीका माल	ईंटें
१.	खेती तथा पशुपालन				
	अनावर्तक खर्च	१,५५,०५०	२१,९८५	—	१४,५४०
	आवर्तक खर्च	२,१४,३४०	१,५७,८७०	४०,३७०	—
	जोड (१)	३,६९,३९०	१,७९,८५५	४०,३७०	१४,५४०
२.	ग्रामोद्योग				
	अनावर्तक खर्च	२६,४००	९६०	—	६००
	आवर्तक खर्च	४२,६००	९,६००	३०,०००	—
	जोड (२)	६९,०००	१०,५६०	३०,०००	६००
३	मकान सुधाई	७६,०००	३३,७७०	—	१६,०६०
	जोड (३)	७६,०००	३३,७७०	—	१६,०६०
	कुल(१)+(२)+(३)	५,१४,३९०	२,२४,१८५	७०,३७०	३१,२००

कोष्ठक

गांवकी आयका

क्रमांक	ब्यौरा	वास्तविक आय (रुपये) १९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८
	खेती व पशुपालन	[illegible],६००	५८,६००	३९,९६०
	ग्रामोद्योग	६ ०००	१२,२६०	१६,३४५
	अन्य	[illegible]	५,[illegible]	१०,०५०
	कुल	[illegible]	[illegible]	६६,३५५

कोष्ठक ३

योजना-कालमें आयके अनुपातमें वार्षिक पूंजी-नियोजनकी मात्रा

[१९६०–६१ से १९६४–६५ तक]

क्र	आय (रु०)		वार्षिक पूंजी-नियोजन (रु०)			आयके अनुपातमें पूंजी-नियोजनका प्रतिशत		आयके अनुपातमें टिकाऊ माल पर पूंजी-नियोजनका प्रतिशत	
	१९५९-६०*	१९६४-६५	टिकाऊ माल पर	चालू पूंजी	कुल	१९५९-६०	१९६४-६५	१९५९-६०	१९६४-६५
१	१,२८,३३०	१,८७,८४०	२८,६६८	३६,४४१	६५,१०९	५०.७	३५.१९	२२.३	१५.०५

* १९५९–६० की आय १९६०–६१ के पूंजी-नियोजनके लिए उपलब्ध होगी।

कोष्ठक ४

योजना-कालमें आयके अनुपातमें वार्षिक पूंजी-नियोजनकी मात्रा

[१९६५–६६ से १९६९–७० तक]

क्र.	आय (रु०)		वार्षिक पूंजी-नियोजन (रु०)			आयके अनुपातमे पूंजी-नियोजनका प्रतिशत		आयके अनुपातमें टिकाऊ माल पर पूंजी-नियोजनका प्रतिशत	
	१९६४-६५*	१९६९-७०	टिकाऊ माल पर	चालू पूंजी	कुल	१९६४-६५	१९६९-७०	१९६४-६५	१९६९-७०
१.	१,८७,८४०	२,४८,११५	२२,८२२	५१,३८८	७४,२१०	३९.५	२९.९	१२.१	९.२

* १९६४–६५ की आय १९६५–६६ के पूंजी-नियोजनके लिए उपलब्ध होगी।

५

कोष्ठक १

विभिन्न क्षेत्रोंमें मानव-शक्तिका उपयोग

क्र	वर्ष		उपलब्ध मानव-शक्ति (मानव-दिन)	खेती और पशुपालन मानव-दिन	खेती और पशुपालन प्रतिशत	ग्रामोद्योग मानव-दिन	ग्रामोद्योग प्रतिशत	अन्य मानव-दिन	अन्य प्रतिशत	कुल मानव-दिन	उपलब्ध मानव-शक्तिमें से मानव-शक्तिके उपयोगका प्रतिशत
१	सर्वेक्षण वर्ष	१९५५-५६	४८,९००	३०,६२५	८१ ९४	४,२५०	११ ३८	२,५००	६ ६८	३७,३७५	६३ ४
२	प्रथम वर्ष	१९५६-५७	५९,७००	३०,६२५	६५.४४	१४,२८२	३०.५३	१,८८१	४ ०३	४६,७८८	७८.३
३.	दूसरा वर्ष	१९५७-५८	६०,८००	२७,५०७	४६ ९४	१५,१६७	२५ ७६	१६,००६	२७.३०	५८,६८०	९६.५
४	तीसरा वर्ष	१९५८-५९	६२,७००	३०,१९१	५४ ३९	११,१९१	२० १८	१४,१४३	२५ ४३	५५,५२५	८८.५
५.	चौथा वर्ष	१९५९-६०	६४,९००	३२,२४०	५१ ३८	२१,०८१	३३ ६०	९,३२९	१४ ८२	६२,८५०	९६.८
६.	प्रथम दूरदर्शी योजनाकी अवधि	१९६४-६५	६९,७००	५१,३००	७३ ६०	१३,७००	१९ ७०	४,७००	६.७०	६९,७००	१००.०
७	द्वितीय दूरदर्शी योजनाकी अवधि	१९६९-७०	७६,६००	५२,७००	६८.८०	१६,२००	२१.२०	७,७०९	१०.००	७६,६००	१००.०

कोष्ठक २

यंत्रशक्तिके उपयोगके कारण मानव-शक्तिमें परिवर्तन

क्रमाक	व्योग	१९६९-७० में मानव-शक्तिकी आवश्यकता: कार्यक्रमका विस्तार (एकड़): सुधरी हुई पद्धति	कार्यक्रमका विस्तार (एकड़): यान्त्रिक पद्धति	मानव-शक्तिकी आवश्यकता (मानव-दिन): सुधरी हुई पद्धति	मानव-शक्तिकी आवश्यकता (मानव-दिन): यान्त्रिक पद्धति	कुल	तुलनात्मक दृष्टिसे मानव-शक्तिकी आवश्यकता (मानव-दिन): सुधरी हुई पद्धति	तुलनात्मक दृष्टिसे मानव-शक्तिकी आवश्यकता (मानव-दिन): यान्त्रिक पद्धति
(अ)	खेती*							
१	पूर्व-तैयारी	—	९००	—	१,४२४	१,४२४	७,३९०	१,४२४
२	बुवाई	—	८२०	—	१,९४१	१,९४१	४,२०३	१,९४१
३.	जुताई	—	६०५	—	७,०६२	७,०६२	८,११०	७,०६२
४.	खाद देना	—	९००	—	२,४८२	२,४८२	४,४२०	२,४८२
५.	रोपाई	७०	—	१,३८०	—	१,३८०	१,३८०	१,३८०
६.	निराई	८२५	—	३,१३०	—	३,१३०	३,१३०	३,१३०
७.	दवा	—	६७०	—	७०८	७०८	७०८	७०८

* विभिन्न फसलोंकी सारी क्रियाओंका यंत्रोंकी मददसे यंत्रीकरण करनेका निर्णय किया गया है। अधिकांश फसलोंकी केवल निराई, रोपाई और कटाईमें यन्त्रोंका उपयोग नहीं किया जायगा।

८. चौकी करना	—	—	—	—	—	—	—
९. बटाई	५८०	३००	११,४२५	२,९३२	१४,३५[illegible]	१५,२७१	१४,३५७
१०. अनाज निकालना	—	६४०	—	४,८३८	४,८३८	८,१७०	४,८३८
११. यातायात	—	८५०	—	३,८८७	३,८८७	८,०६०	३,८८७
१२ गिचाई	—	५६०	—	४,८५१	४,८५१	८,४१०	४,८५१
जोड़ (१)	१,४७५	६,२४५	१५,९३५	३०,१२५	४६,०६०	६१,२५२	४६,०६०
ग्रामोद्योग							
(ब) खादी		१९,२०० वर्ग गज					
१३ पिंजाई	—	—	—	—	—	२००	५२५
१४ पूनी बनाना	—	—	—	५२५	५२५	४,९२५	३,२००
१५ कताई	—	—	—	३,२००	३,२००	४,९२५	३,२००
१६ बुनाई	—	—	—	१,२००	१,२००	२,४००	१,२००
१७. सिलाई	—	—	—	१,२००	१,२००	१,२००	१,२००
गुड़-खाडसारी							
१८. कोल्हूसे गन्ना पेरना और गुड़ बनाना	८०० ८० मन गुड़	—	—	—	—	२०,८००	—

१९ यन्त्रसे गन्ना पेरना	३६०	५,२००	—	५,२००	५,२००	—	५,२००
	व० मन खाड						
और खाडसारी बनाना	७,५००						
	ब० मन राब						
२० अनाजका रूपांतर	३,९००	३००	—	६००	६००	३,९००	३००
२१ तेलहन पेरना	१२० मन	—	६००	—	६००	६००	८५
२२ सुनारी	—	—	१,८००	—	१,८००	१,८००	१,८००
२३ सुतारी	—	—	९००	—	९००	९००	९००
२४. चमड़ेका काम	—	—	६००	—	६००	६००	६००
२५ मोची काम	—	—	९००	—	९००	६००	६००
जोड़ (२)			४,८००	११,९२५	१६,७२५	४२,८५०	१६,७२५
कुल (१)+(२)			२०,७३५	४२,०५०	६२,७८५	१,१२,१०२	६२,७८५

७ बुनाई	९००	—	१,२००	—
८ दर्जीकाम	९००	—	१,२००	—
९ तेलहन पेरना	६००	—	६००	—
१० सुतारी	९००	—	९००	—
११ सुनारी	१,८००	—	१,८००	—
१२ चमड़ेका काम	६००	—	६००	—
१३ मोचीकाम	—	—	९००	—
जोड़ (२)	१३,३००	१९.६	१५,२००	२२.१
३ १४ निर्माण	१,२००	—	१,२००	—
जोड़ (३)	१,२००	१.६	१,२००	१.५
४. १५. व्यापार	६००	—	६००	—
जोड़ (४)	६००	०.८	६००	०.८
५. सेवा				
१६. शिक्षक	६००	—	१,५००	—
१७. डॉक्टर	—	—	३००	—